‘कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए’ उपन्यास में विस्थापन की त्रासदी

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़ की एम.फिल. (हिंदी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु शोध-प्रबंध

शोध निर्देशक
डॉ. अमित कुमार

शोधार्थी
रूबी पाण्डेय
अनुक्रमांक : 200933

हिंदी विभाग

मानविकी एवं समाज विज्ञान पीठ

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़-123031

(2022)

घोषणा-पत्र

मै, रूबी पाण्डेय यह घोषणा करती हूँ कि मैं **डॉ. अमित कुमार** के शोध निर्देशन में ***'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में विस्थापन की त्रासदी*** विषय पर एम.फिल. (हिंदी) की उपाधि प्राप्ति के लिए लघु शोध-प्रबंध प्रस्तुत कर रही हूँ। मेरा यह प्रबंध पूर्णतः मौलिक एवं शोधपरक है। मेरी जानकारी में इससे पूर्व हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय तथा अन्य किसी भी संस्था अथवा विश्वविद्यालय में इस विषय पर कोई शोध कार्य नहीं हुआ है। इस लघु शोध-प्रबंध के लेखन में समस्त संदर्भों का यथास्थान उल्लेख किया गया है।

(रूबी पाण्डेय)
शोधार्थी

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री रूबी पाण्डेय ने मेरे निर्देशन में एम.फिल. (हिंदी) की उपाधि हेतु ***'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में विस्थापन की त्रासदी*** विषय पर शोध कार्य किया है। यह शोध कार्य इनके मौलिक प्रयास का प्रतिफलन है। मैं इस लघु शोध-प्रबंध की मौलिकता और प्रतिपादित तथ्यों की उपयोगिता को दृष्टिगत कर इसे मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

शोध-निर्देशक

(डॉ. अमित कुमार)

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़

संस्तुत एवं अग्रसारित

प्रभारी/अध्यक्ष,
हिंदी विभाग, ह.कें.वि.

अनुक्रमाणिका

भूमिका	i-iii
अध्याय	पृष्ठ सं.
प्रथम अध्याय : **भारतीय उपमहाद्वीप: विभाजन और विस्थापन**	1-33
द्वितीय अध्याय : **अलका सरावगी का जीवन और सृजन**	34-51
तृतीय अध्याय : **'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में विस्थापन**	52-85
उपसंहार	86-91
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	92-95

भूमिका

हिंदी उपन्यास लेखिकाओं में अलका सरावगी का विशिष्ट स्थान है। वे एक संघर्षशील तथा प्रतिभावान कथाकार हैं। उन्होंने अपने कथा साहित्य में सामाजिक जीवन से जुड़ी समस्याओं एवं विषमताओं को चित्रित किया है। उन्होंने अपने आस-पास के घटित प्रसंगों को भी अपने साहित्य में स्थान दिया है। उनके साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों का यथार्थ रूप प्रस्तुत है।

'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' अलका सरावगी का महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसमें विभाजन के कारण हुए विस्थापन की त्रासदी को गहरे से अभिव्यक्त किया है। अपने शोध विषय की विवेचना के लिए मैंने इसे तीन अध्यायों में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय '**भारतीय उपमहाद्वीप: विभाजन और विस्थापन'** महाद्वीप की उत्पत्ति, एशिया महाद्वीप, भारतीय उपमहाद्वीप से संबंधित है। इसके अंतर्गत आधुनिक भारत का संक्षिप्त इतिहास, भारत-पाकिस्तान विभाजन, पूर्वी पाकिस्तान, पश्चिमी पाकिस्तान विभाजन और बांग्लादेश की उदय संबंधी ऐतिहासिक घटनाओं को उजागर करने का प्रयास किया गया, इन अवधारणाओं के साथ ही वर्तमान दृष्टिकोण की प्रस्तुति के अतिरिक्त विभाजन के उपरान्त विस्थापन की मूल समस्या व उसके कारण भी बताए गए हैं।

द्वितीय अध्याय में '**अलका सरावगी के जीवन और सृजन**' अलका सरावगी के जन्म, इनके पारिवारिक माहौल, व्यक्तित्व, माता-पिता, शिक्षा, वैवाहिक, साहित्य सृजन एवं सम्मान आदि के बारे में संक्षेप में बताया गया है।

तृतीय अध्याय '**कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में विस्थापन** में विस्थापन की त्रासदी की समस्या को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसमें विस्थापित लोगों की पीड़ा और इसके कारणों व प्रभावों का विवेचन किया गया है।

उपसंहार में समस्त अध्यायों के निष्कर्षों का निष्कर्ष समाहित है।

सर्वप्रथम प्रस्तुत शोध-प्रबंध को पूरा करने के लिए शोध-निर्देशक डॉ. अमित कुमार सर को मैं धन्यवाद देना चाहती हूँ, जिनके स्नेहिल सहयोग और मार्गदर्शन के बिना यह शोध कार्य पूर्ण होना असंभव था।

शोध कार्य के दौरान हिंदी विभाग के सहायक प्रोफेसर डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय सर के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिनसे समय-समय पर शोध से संबंधित पूर्ण सहयोग एवं जानकारी प्राप्त हुई तथा मै डॉ. अरविन्द सिंह तेजावत सर के लिए भी आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने समय-समय पर शोध और कोर्स वर्क की कक्षाओं में मेरा मार्गदर्शन किया।

इसी के साथ मेरे जीवन की निरंतर उन्नति व भलाई चाहने वाले, जिनके योगदान को मैं शब्दों में अभिव्यक्त नहीं कर सकती, जिन्होंने मुझे सदैव सकारात्मक दृष्टिकोण निर्माण में मार्गदर्शन दिया तथा हमेशा जीवन में आदर्श रहने वाले सहायक प्रोफेसर डॉ. रवि प्रताप पाण्डेय के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना परम सौभाग्य समझती हूँ।

मेरे शुभचिंतक मित्र और सहपाठी विकास भैया और हिमांशु के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ जिन्होंने समय-समय पर मेरा मार्गदर्शन किया।

माँ- पापा का प्यार कदम-कदम पर मिला है। उनके प्रति शब्दों में कृतज्ञता व्यक्त नहीं की जा सकती है। अपने ससुराल वालों की आभारी हूँ जिन्होंने मेरा उत्साहवर्द्धन किया। शोध के दौरान विभिन्न

पुस्तकालयों की पुस्तकों का उपयोग मैंने अध्ययन के लिए किया है, उन पुस्तकालयों के कर्मचारियों का सहृदय धन्यवाद, जिन्होंने भरपूर सहयोग दिया।

रूबी पाण्डेय

प्रथम अध्याय
भारतीय उपमहाद्वीप : विभाजन और विस्थापन

पृथ्वी सर्वप्रथम आग का गोला थी जैसे-जैसे पृथ्वी ठंडी हुई, यह दो भागों में विभाजित हुई। सम्पूर्ण पृथ्वी का एक भाग स्थलमंडल तथा दूसरा भाग जलमंडल कहलाया। स्थलमंडल का विशाल एकीकृत भाग संयुक्त रूप से 'पेंजिया' कहलाया तथा एक विशाल महासागर जो पेंजिया को चारों ओर से घेरे हुए था, तदनुसार उसका नाम 'पैन्थालासा' रखा गया। स्थलमंडल के विखंडन से यह दो भागों में बंट गया, जिसे कालांतर में 'अन्गारालैंड' कहा गया तथा दूसरे भाग को 'गोंडवाना लैंड' के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार स्थलमंडल से महाद्वीपों तथा जलमंडल से महासागरों की उत्पत्ति हुई।

"पेंजिया का विभाजन कार्बनिफरस युग से प्रारम्भ होता है। गुरुत्व तथा ज्वलनशीलता के बल के कारण पेंजिया का दो भागों में विभाजन हो गया। उत्तरी भाग लारेशिया तथा दक्षिणी भाग गोंडवाना लैंड कहलाया। बीच का भाग 'टेथिस सागर' के रूप में बदल गया। इसे टेथिस का खुलना कहा जाता है। जुरैसिक युग में गोंडवाना लैंड का विभाजन हो गया तथा ज्वारीय बल के कारण प्रायद्वीपीय भारत, मैडागास्कर, आस्ट्रेलिया तथा अंटार्कटिका, गोंडवाना लैंड से अलग होकर प्रवाहित हो गए। इसी समय उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका ज्वारीय बल के कारण पश्चिम की ओर प्रवाहित हो गए। प्रायद्वीपीय भारत के उत्तर की ओर प्रवाहित होने के कारण हिन्द महासागर का निर्माण हुआ। दोनों अमेरिका के पश्चिम की ओर प्रवाहित होने के कारण अंध महासागर का निर्माण हुआ। स्थल भाग समान गति से प्रवाहित नहीं हो रहे थे। अंध महासागर का रूप उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका के पश्चिम दिशा में विभिन्न गति से प्रवाह के कारण संभव हुआ। दोनों अमेरिका के पश्चिम दिशा की ओर प्रवाह के कारण ही मध्य अटलांटिक महासागर का निर्माण हुआ। आर्कटिक सागर तथा उत्तरी ध्रुव सागर का निर्माण महाद्वीपों के उत्तरी ध्रुव से हटने के कारण

हुआ। पैन्थालासा पर कई दिशाओं से महाद्वीपों के अतिक्रमण के कारण उसका आकार संकुचित हो गया तथा उसका अवशिष्ट भाग प्रशांत महासागर बना। इस तरह स्थल तथा जल का वर्तमान रूप प्लायोसीन युग तक पूर्ण हो गया था।"[1]

इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी महाद्वीपों एवं महासागरों का योग है। पृथ्वी की भूपर्पति भाग 71 प्रतिशत तथा महासागरों का भू-भाग 29 प्रतिशत महाद्वीपों से घिरा हुआ है। वर्तमान स्थिति में धरातल पर महाद्वीपों एवं महासागरों का रूप जो दृष्टिगोचर हो रहा है, ऐसी अवस्था पूर्व में नहीं थी। अनेक विद्वानों ने इनकी उत्पत्ति, विकास तथा विस्तार के सम्बन्ध में अपने अलग-अलग मत प्रस्तुत किये हैं।

'जर्मन विद्वान् अल्फ्रेड वेगनर' ने 1912 ई. में 'महाद्वीपीय प्रवाह सिद्धांत' का प्रतिपादन किया था। वेगनर ने पूर्व जलवायु शाखा, वनस्पति शाखा और भू-गर्भ शास्त्र के प्रमाणों के आधार पर यह माना कि कार्बोनिफरस युग में विश्व के समस्त भूखंड पेंजिया में तीन परतें-सियाल, सीमा और निफे हैं, जो महाद्वीपीय भाग थे। 'सियाल' हलके तत्वों से बने होने के कारण 'सीमा' (महासागरीय तली) पर तैर रहे थे। कालांतर में पैंजिया के दोनों भागों का विखंडन हुआ और भू-खण्डों में दो भिन्न-भिन्न दिशाओं में प्रवाह उत्पन्न हुआ। यह प्रवाह दो प्रकार के बलों द्वारा हुआ –

क. उत्तर की ओर या भूमध्य रेखा की ओर प्रवाह

ख. पश्चिम दिशा में प्रवास

विश्व के महाद्वीपीय भूगोल के क्रिटेशियस युग में अन्गारालैंड के टूटने के कारण 'उत्तरी अमेरिका', यूरोप' तथा 'एशिया' बना तथा गोंडवाना लैंड के विभाजन के फलस्वरूप 'दक्षिणी अमेरिका' 'अफ्रीका' 'प्रायद्वीपीय भारत' मेडागास्कर तथा आस्ट्रेलिया का निर्माण हुआ।

"बीसवीं सदी के दौरान, भूविज्ञानिको ने 'लेट विव' सिद्धांत को स्वीकार किया है जिसके अनुसार महाद्वीप पृथ्वी की ऊपरी सतह पर सरकते हैं, जिसे 'कॉन्टिनेंटल ड्रिफ्ट' कहते है। पृथ्वी की सतह पर सात बड़े और कई छोटे 'टेक्टानिक प्लेट' होते हैं और यही टेक्टोनिक प्लेटलेट्स एक दूसरे से दूर होते हैं, टूट कर अलग होते हैं, जो समय बीतते 'महाद्वीप' बन जाते हैं।"[2].

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पृथ्वी के जो सात सबसे ठोस सतह के टुकड़े हैं, उन्हें महाद्वीप कहा गया है। इन्हीं ठोस सतहों को अलग-अलग नाम दिया गया है-एशिया, अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, अन्टार्कटिका, यूरोप और आस्ट्रेलिया।

एशिया: एक भौगोलिक इकाई

एशिया या जम्बुद्वीप जनसंख्या और आकार दोनों ही दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा महाद्वीप है। इसमें पृथ्वी के कुल भू-भाग के क्षेत्रफल का 8.8 प्रतिशत हिस्सा और सबसे समुद्र से जुड़ा भाग 62,800 किलोमीटर का है। एशिया महाद्वीप की प्राकृतिक बनावट अपने ढंग की अनोखी प्रतीत होती है, वृहद् आकार के कारण विषम प्राकृतिक संरचना से भी यह महाद्वीप सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। संसार की सर्वाधिक बड़ी नदियाँ एशिया महाद्वीप में प्रवाहित होती हैं, इसके अधिकांश भाग में साधारण जलप्रवाह प्रणाली विकसित है।

जलवायु एवं प्राकृतिक वनस्पति की अत्यधिक विविधता, विषमता तथा वृहद् विस्तार के कारण एशिया महाद्वीप में अनेक तरह के अवशेष, जीव-जंतु पाए जाते हैं।

"विश्व के सात महाद्वीपों की अपनी भिन्न-भिन्न विशेषतायें हैं। एशिया एक महाद्वीप है, जिसमे कई देश शामिल हैं। एशिया पृथ्वी पर सबसे बड़ा महाद्वीप है और यह उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है। पश्चिम में इसकी सीमाएँ यूरोप से मिलती हैं। एशिया और यूरोप महाद्वीप को मिलाकर कभी-कभी यूरेशिया भी कहा

जाता है। यूरोप महाद्वीप और एशिया महाद्वीप प्राकृतिक रूप से भिन्न होने के कारण अलग मानते हैं। एशियाई महाद्वीप भूमध्य सागर, अंध महासागर, आर्कटिक महासागर, प्रशांत महासागर और हिन्द महासागर से घिरा हुआ है। चीन और भारत विश्व के दो सर्वाधिक जनसंख्या वाले देश एशिया महाद्वीप में स्थित हैं। एशिया को 'सभ्यता का पालना' तथा सभी धर्मों की जन्मस्थली भी कहा जाता है।

सबसे प्राचीन मानव सभ्यताओं में जैसे भारतीय सभ्यता या चीनी सभ्यता इत्यादि का जन्म भी इसी महाद्वीप में हुआ था। "वर्तमान समय में 14,50,80000 वर्ग किलोमीटर विश्व का कुल क्षेत्रफल है जिसमे एशिया महाद्वीप का क्षेत्रफल 4,40,30,200 वर्ग किलोमीटर है अर्थात सम्पूर्ण विश्व के क्षेत्रफल का लगभग 30 प्रतिशत एशिया भूखंड में है।"[3]

प्रो. कोर्लिश के अनुसार- "जब यूरोप महाद्वीप के निवासी असभ्य थे, तब एशिया के निवासी विकास की अवस्था में थे। लेकिन आज एशिया महाद्वीप अनेक राजनीतिक समस्याओं से घिरा हुआ है। एशिया महाद्वीप के दक्षिण-पश्चिमी एवं दक्षिण-पूर्वी भागों में स्थित देश राजनैतिक विस्फोटों के शिकार पर बैठे हुए हैं।"[4]

एशिया महाद्वीप की प्राचीनतम संस्कृति, सभ्यता तथा ज्ञान-विज्ञान की अभ्युदित स्थिति को देखकर एवं इस महाद्वीप में बढती हुई मानव शक्ति एवं सुरक्षित प्राकृतिक तथा आर्थिक संसाधनों के आधार पर हम एशिया महाद्वीप की भविष्य और विकास की संभावनाओं को भली-भांति समझते हैं। यह महाद्वीप कृषि उत्पादन की बाहुल्यता, खनिज पदार्थ, उद्योग, जलवायु, निर्माण उद्योग आदि से विकसित माना जाता था। विश्व की आधुनिक जागृति इस बात का द्योतक है कि विश्व का सबसे विकसित महाद्वीप एशिया औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से बहुत तेजी से आगे बढ़ रहा है।

'एशिया' शब्द की उत्पति 'हिब्बू' भाषा के शब्द से हुई जिसका अर्थ 'उगता हुआ सूर्य है। एशिया महाद्वीप में कुल पचास देश शामिल हैं जिनमें से सबसे बड़ा देश रूस और सबसे छोटा देश है मालदीव।

एशिया महाद्वीप, पश्चिमी एशिया, मध्य एशिया, दक्षिणी एशिया आदि भागों में बंटा हुआ हैं। दक्षिण-एशिया में आठ देश शामिल हैं, जिनमें भारत, पाकिस्तान, भूटान, नेपाल, बांग्लादेश, श्रीलंका और मालदीव देश आते हैं।"[5]

भारतीय उपमहाद्वीप

भारतीय उपमहाद्वीप, एशिया महाद्वीप के दक्षिणी भाग में स्थित एक उपमहाद्वीप हैं । इस उपमहाद्वीप को दक्षिण एशिया भी कहा जाता है। भू-वैज्ञानिक दृष्टि से भारतीय उपमहाद्वीप का अधिकांश भाग भारतीय प्लेट पर विद्यमान है। भारतीय उपमहाद्वीप को अधिकांशतः 'हिन्द महाद्वीप' भी कहते हैं। इस उपमहाद्वीप में विशेषतः भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका, अफगानिस्तान व मालदीव देशों को प्रायः सम्मिलित किया जाता हैं।

"भौगोलिक रूप से भारतीय उपमहाद्वीप एक प्रायद्वीपीय क्षेत्र से जाना जाता है जो दक्षिण मध्य एशिया में स्थित है। इस क्षेत्र में सम्मिलित सभी सातों देशों का कुल क्षेत्रफल 44 लाख वर्ग किलोमीटर है, जो एशियाई महाद्वीप का लगभग 9 प्रतिशत या विश्व के भूमि क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत है। कुल मिलाकर एशिया के 34 प्रतिशत लोग निवास करते हैं और यहाँ बड़ी संख्या में विभिन्न जनसमूहों के लोग रहते हैं।"[6]

ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार,- 'उपमहाद्वीप' शब्द एक महाद्वीप के उपखंड को दर्शाता है जिसकी एक अलग भौगोलिक, राजनैतिक या सांस्कृतिक पहचान है और महाद्वीप से कुछ हद तक बड़ा भूमि द्रव्यमान भी है।"[7]

'भारतीय उपमहाद्वीप भारतीय प्लेट पर स्थित है और यह हिमालय से लेकर हिन्द महासागर के दक्षिण की ओर तक मिली हुई है। हिमालय के दक्षिण में एशिया का वह भाग जो अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के मध्य हिन्द महासागर में फैला एक प्रायद्वीप बनता है । एतिहासिक दृष्टि से ग्रेटर भारत के पूरे

क्षेत्र का निर्माण करते हुए, यह क्षेत्र अब भारत बांग्लादेश और पाकिस्तान नामक तीन देशों में विभाजित है। इतिहासकार बी. एन. मुखर्जी के अनुसार "उपमहाद्वीप एक अभिभाज्य भौगोलिक इकाई है । भारतीय उपमहाद्वीप पर चर्चा करने वाले भारतीय विश्लेषक अपने विश्लेषण में इन तीन देशों भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश की व्याख्या करते हुए इन देशों की ऐतिहासिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विरासत को ध्यान में अवश्य रखना चाहते हैं। हमारे समाज में 'उपमहाद्वीप' शब्द का प्रयोग न्यूनतम होता है।

"भारत देश का विस्तार उपमहाद्वीप में बहुत विशाल होने के कारण भारतीय उपमहाद्वीप के नाम से जाना जाता है। भारत के उत्तर दिशा में हिमालय, पूर्व दिशा में बंगाल की खाड़ी, पश्चिम दिशा में अंध महासागर और दक्षिण दिशा में हिन्द महासागर है। भारत के अंडमान-निकोबार एवं लक्षदीप को छोड़कर शेष भूप्रदेश भौगोलिक दृष्टि से अखंडित हैं । भारतीय इतिहास के विकास क्रम पर विचार करें तो निम्नलिखित भूप्रदेश महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

क. हिमालय

ख. सिन्धु गंगा- ब्रह्मपुत्र नदियों का मैदानी भाग

ग. थार का मरुस्थल

घ. समुद्री तटों का प्रदेश

ङ. समुद्र में स्थित द्वीप

भौगोलिक दृष्टि से भारतीय समाज और संस्कृति में निरन्तर एकता पायी जाती है, इन विशेषताओं के कारण ही भारत को विविधतायुक्त समाज कहा जा सकता है। भारत में व्याप्त विभिन्नताओं को कई रूपों में देख सकते हैं- सजातीय, नृजातिकी, धार्मिक विभिन्नतायें, भाषा संबंधी विभिन्नतायें, क्षेत्रीय विभिन्नतायें, सांस्कृतिक विभिन्नतायें, प्रजातीय विभिन्नतायें, जन्सख्यात्मक विभिन्नतायें, जलवायु संबंधी विषमतायें, जातीय विभिन्नता, जनजातीय विभिन्नता तथा अभिजात एवं जनसाधारण आदि।"[8]

अंग्रेजों के भारत आने से पूर्व भारत कृषि प्रधान एवं आत्मनिर्भर था। भारत में ब्रिटिश द्वारा उपनिवेशवाद की शुरूआत होती है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही अंग्रेजी शासन से स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु संघर्ष प्रारंभ होता है। भारतीयों की फूट तथा विघटनकारी स्थितियों के कारण अठाहरवीं शताब्दी में भारत पर अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हो गया। भारत के इतिहास में यह पहली घटना थी, जिसके प्रशासन और भाग्य-निर्णय की डोर एक ऐसे शासक के हाथ में थी, जो स्वयं अपनी जन्मभूमि से सैकड़ों मील दूर अवस्थित था।

इतिहास के निर्माण में भौगोलिक विशेषताओं का प्रमुख योगदान माना जाता है। आदिमानव के जीवन स्तर, तकनीकी विज्ञान के परिसर में हुए परिवर्तन, पाषाण संस्कृति से लेकर नदी तट की कृषि प्रधान संस्कृति एवं मानवीय संस्कृति की एतिहासिक यात्रा में घटित सभी प्रकार की भूतकालीन घटनाओं के क्रमबद्ध तथ्यों की प्रस्तुति, जो इतिहास के चार प्रमुख आधार स्तम्भ, स्थान, काल, व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध भौगोलिक परिस्थतियों से सम्बंधित है। भौगोलिक परिस्थितियों का इतिहास पर विभिन्न प्रकार से प्रभाव पड़ता है। हम जिस प्रदेश में रहते हैं, उस प्रदेश की वर्षा, खेती की उपज, प्राणियों में पायी जाने वाली विविधता, जलवायु आदि हमारे जीवन के साधन होते हैं और उन्हीं के आधार पर उस प्रदेश की जीवन प्रणाली व संस्कृति विकसित होती रहती है।

पं. जवाहर लाल नेहरु ने अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में कहा है- "पुस्तकों, प्राचीन स्मारकों और विगत सांस्कृतिक उपलब्धियों ने यद्यपि मुझमें एक हद तक भारत की समझ पैदा की, लेकिन मुझे उनसे संताप नहीं हुआ, न ही मुझे वे उत्तर दे सकीं जिसकी तलाश मैं कर रहा था। वर्तमान मेरे लिए और मुझ जैसे बहुत से और लोगों के लिए, भयंकर गरीबी, और दुर्गति और मध्य वर्ग की कठिनाइयों का विचित्र मिश्रण है।"[9]

भारतीय समाज तथा संस्कृति में अन्य तरह की विभिन्नताओं के बावजूद भी इसमें एकता का भाव विद्यमान है। भारत की एकता के सन्दर्भ में 'सर हर्बर्ट रिजले' ने कहा है- "भारत में धर्म रीति-रिवाज और भाषा तथा सामाजिक और भौतिक विभिन्नताओं के होते हुए भी जीवन की एक विशेष एकरूपता कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक देखी जा सकती हैं।"[10]

सी.ई. एम. जोड़ का मानना है- "जो भी कारण हो, विचारों तथा जातियों के अनेक तत्वों में समन्वय अनेकता में एकता उत्पन्न करने की भारतीयों की क्षमता एवं तत्परता ही मानव जाति के लिए इनकी विशिष्टता को दर्शाती हैं।"[11]

जवाहर लाल नेहरु ने लिखा है- "इस्लाम को हिंदुस्तान में एक मजहबी और राजनीतिक शक्ल में आकर बहुत से नए मसले खड़ा करना था, लेकिन यह बात ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि हिन्दुस्तानी परिस्थितियों में फर्क ले आने में उसे बहुत जमाना लग गया। हिंदुस्तान के बीच उसे पहुँचने में करीब छः सदियाँ लग गयीं और जब वह वहाँ राजनीतिक विजयों के साथ पहुंचा, उस वक्त यह खुद बहुत बदल चुका था और इसके अलमबरदार दूसरे ही लोग थे।"[12]

भारतीय उपमहाद्वीप में आमतौर पर भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश सम्मिलित किये जाते हैं। भारत भौगोलिक दृष्टि से विश्व का सातवाँ बड़ा देश है। भारत के पश्चिम में पाकिस्तान, उत्तर पूर्व में ची, नेपाल और भूटान पूर्व में बांग्लादेश और म्यांमार स्थित है। उत्तर मध्यकालीन युग में धीरे-धीरे ब्रिटिश ईस्ट-इंडिया कंपनी के शासन का विस्तार हुआ, जिसने भारत को औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में बदल दिया। ब्रिटिश राज शासन 1858 ई. में शुरू हुआ और धीरे-धीरे एक प्रभावशाली राष्ट्रवादी आन्दोलन शुरू हुआ। यह अहिंसक विरोध के लिए जाना जाता है। 'फूट डालो और राज करो' की नीति ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा रखी गयी आधारशिला थी, जो भारतीय भूमि से उठने वाले जन आन्दोलन की सम्भावना को अपनी तरफ से बढ़ावा दे रहे थे। ब्रिटिश साम्राज्य पहले इस नीति का प्रयोग धर्म को आधार बनाकर नहीं, बल्कि एक

वर्ग को दूसरे वर्ग के खिलाफ शत्रुता का भाव पैदा करने वाली नीति पर अमल किया। इस प्रकार 19 वीं सदी के बीतते-बीतते देश में विभिन्न तरह की अभूतपूर्व स्थितियां बन गयी थी, जो राष्ट्रीय आन्दोलन हेतु अनिवार्य रूप से आवश्यक थी।

'एक आन्दोलन के मूल तत्व ये हैं: राजनीतिक उद्देश्य, कार्यक्रम और विचारधारा, राजनीतिक संघर्ष की रणनीति, तरीके और तकनीक, सामाजिक आधार और वर्ग अथवा सामाजिक चरित्र। इन्हीं तत्वों के सन्दर्भ में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की निरंतरता और परिवर्तन की सीमा और चरित्र का पता लगाया जा सकता है, और लगाया गया है। हालांकि इन तत्वों के मध्य हमेशा विभाजन नहीं किया जा सकता और कभी-कभी वे एक दूसरे से मिल भी जाते हैं। इन तत्वों में से प्रथम तत्व-राजनीतिक उद्देश्य, कार्यक्रम और विचारधारा के तत्व-चर्चा का विषय नहीं बनाया जाता। इसे संक्षेप में केवल यह संकेत देने के लिए प्रयोग किया जाता है कि प्रारंभिक राष्ट्रवादियों के मूल राजनीतिक उद्देश्य ये थे: भारतवासियों को एक राष्ट्र के रूप में एकताबद्ध करने की प्रक्रिया में सहायता देना, जनता की प्रभुसत्ता के सिद्धांत पर आधारित आधुनिक राजनीति की शुरूआत करना और उसके मन में यह विचार उत्पन्न करना कि राजनीति केवल शासक वर्गों का ही अधिकार नहीं है, भारतवासियों में आत्मविश्वास पैदा करना, भारत के राष्ट्रीय राजनीतिक नेतृत्व अथवा मुख्यालय की स्थापना करना, एक साम्राज्यवाद-विरोधी विचारधारा निर्मित करना और उसे एक ठोस रूप प्रदान करना, आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास को बढ़ावा देना, और अंत में एक व्यापक अखिल भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का निर्माण करना। कांग्रेस आन्दोलन के कई चरण थे, जिनमें भारत के हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, इसाई सबके हित की लड़ाई लड़ने के लिए स्वाधीनता आन्दोलन की क्रांति चलने वाली थी।'[13] जो इस प्रकार है -

क. उदार नरम पंथी राष्ट्रवादी युग (1885 ई. -1905 ई. तक)

ख. उग्र राष्ट्रवादी युग (1906 ई. -1919 ई. तक)

ग. राष्ट्रीयता का गांधीवादी युग (1920 ई.–1947 ई. तक)

इन अभियान की सबसे बड़ी उपलब्धि थी कि मजहब और सम्प्रदाय से ऊपर उठकर राष्ट्रीय भावना के विकास का वातावरण बनाना था तथा कांग्रेस में राष्ट्रीय शिक्षा का प्रभावी पाठ पढ़ाया जाना जिससे प्रजातंत्र एवं स्वाधीनता की अवधारणा में योगदान दे सकें। इन कांग्रेस आन्दोलनों के चरण में एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार की गई जिस पर आगे चलकर स्वतंत्रता पाने के लिए सारे आन्दोलन सफलतापूर्वक चलाये गये। राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रता की नींव लोकमान्य तिलक के 'केसरी समाचार पत्र' के राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रभाव के प्रचार से राखी गयी। उग्र राष्ट्रवादी युग के अंत के साथ ही गांधीवादी युग का प्रारंभ हो जाता है | भारत के राजनैतिक क्षेत्र में महात्मा गाँधी का प्रवेश एक नवीन युग का प्रारंभ माना जाता है। महात्मा गाँधी सत्य और अहिंसा के आधार पर भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के भीष्म पितामह माने जाते हैं। आधुनिक भारत के राजनैतिक, सामजिक और आर्थिक क्षेत्रों में घोर संघर्ष चल रहे थे और मानवीय आत्मा में अशांति और निराशा छाई हुई थी। महात्मा गाँधी द्वारा अपनी सम्यक दृष्टि से संसार को सत्य और अहिंसा का ऐसा व्यापक दृष्टिकोण रखा गया, जिससे भारत में विश्वबंधुत्व, सर्वोत्कृष्ट बल तथा सुदृढ़ साम्राज्य का स्वागत और सम्मान हो सके।

"इतिहासकारों के मुताबिक गाँधी जी का मन गाँवों में बसता था। 1919 ई. में गाँधी जी मुंबई एक संभावित बैरिस्टर के रूप में आये थे। मणि भवन से गाँधी जी ने कम से कम छह राष्ट्रीय आंदोलनों का नेतृत्व किया था। मुंबई में गाँधी जी ने मिल परिसर में सार्वजनिक भाषण दिए थे। यहाँ अक्सर भाषण के उपरान्त महिलायें अपने गहने दान कर देती थीं। मुम्बईवासियों ने असहयोग आन्दोलन के लिए 30 लाख रूपये दान दिए थे। 9 जनवरी, 1915 को गाँधी जी दोबारा मुंबई गए थे। 1919 में 'रोलेट एक्ट के विरोध में उन्होंने सत्याग्रह शुरू किया था। यह विरोध गाँधी जी ने मणि भवन से शुरू किया था। जुलाई 1921, एल्फिसटोन मिल में विदेशी कपड़ों की होलिका जली थी। इससे पूरे भारत में विदेशी सामानों के बहिष्कार

का दौर शुरू हुआ था। मणि भवन एक पुरानी शैली की दो मंजिला इमारत है। 4 जनवरी 1932 को गाँधी जी को मणि भवन से गिरफ्तार किया गया था। यहीं से स्वदेशी, कड़ी और हिन्दू-मुस्लिम एकता जैसे मुद्दे परवान चढ़े थे।'[14]

हिन्दू-मुस्लिम को एक करने के लिए गाँधी जी ने भारतीय भूमि पर कांग्रेस की अगुवाई करने हेतु दोनों को जोड़ दिया था, परन्तु जिन्ना ने हिन्दू-मुसलमानों के बीच के अंतर को समाप्त नहीं होने दिया, परिणामतः यह हिन्दू-मुस्लिम के बीच का तनाव देश विभाजन का कारण बना। 1906 ई. में मुस्लिम लीग ब्रिटिश भारत में एक राजनीतिक पार्टी थी और भारतीय उपमहाद्वीप में मुस्लिम राज्य की स्थापना में सबसे बड़ी वजह थी। इस बैठक में निर्णय लिया गया कि राजनीतिक मार्गदर्शन के लिए मुसलामानों को एक राजनीतिक मंच बनाने की जरूरत हैं।

कुछ इतिहासकार भारतीय और पाकिस्तानी भी यह मानते हैं कि मोहम्मद अली जिन्ना औपनिवेशिक भारत में हिंदू और मुसलमान दो पृथक राष्ट्र मानते थे। कुछ इतिहासकार इस बात पर भी बल देते हैं कि 1947 की घटनाएं और आधुनिक युग में हुए हिंदू मुस्लिम झगड़ों से जुड़े लंबा इतिहास है। देश का विभाजन एक ऐसे विवाद की सांप्रदायिक राजनीति का आखिरी बिंदु था जो बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में शुरू हुआ। "दिसंबर 1916 में लखनऊ समझौता हुआ। यह समझौता कांग्रेस और मुस्लिम लीग के आपसी ताल-मेल को दर्शाता है। इस समझौते के तहत कांग्रेस ने प्रथम चुनाव क्षेत्रों को स्वीकारा था। लखनऊ समझौते ने कांग्रेस के मध्यमवर्गीय, अतिवादियों और मुस्लिम लीग के लिए एक संयुक्त मंच प्रदान किया।"[15]

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में साम्प्रदायिकता के कई कारण हुए। 1920-30 के दशकों में कई घटनाओं के कारण तनाव उभरे थे जैसे मस्जिद के सामने संगीत, गो-रक्षा आन्दोलन आदि घटनाएं साम्प्रदायिक हिंसा के रूप में तब्दील हुई। "19 वीं शताब्दी के आखिरी दशकों और प्रारंभिक 20 वीं

शताब्दी का यह उत्तर भारतीय हिन्दू सुधार आन्दोलन खासतौर पर पंजाब में सक्रिय था। आर्य समाज वैदिक ज्ञान का पुनरुत्थान कर विज्ञान की आधुनिक शिक्षा से जोड़ना चाहता था।"[16]

साम्प्रदायिक कार्यकर्त्ता के प्रचारक अपने-अपने समुदाय में दूसरे समुदाय के खिलाफ नकारात्मक प्रचार को बढ़ावा देते थे। जिसके कारण देश के विभिन्न भागों में दंगे फैलते गए। प्रत्येक सांप्रदायिक दंगों के कारण एक-दूसरे के बीच फर्क गहरे होते गए। सांप्रदायिक कलह 1947 के पहले भी थी लेकिन उसकी वजह से लाखों लोग अपने घरों से नहीं उजड़े थे।

"मुस्लिम लीग की शुरूआत 1906 ई. में ढाका में की गयी थी। शीघ्र ही लोग यू. पी. के विशेषकर अलीगढ़ के मुस्लिम संभ्रांत वर्ग के प्रभाव में आ गए। 1940 के दशक में पार्टी भारतीय उपमहाद्वीप के मुस्लिम बहुल क्षेत्रों की स्वायत्तता या फिर पाकिस्तान की मांग करने लगी।"[17] कुछ इतिहासकारों का मानना है कि लीग की यह मान्यता थी कि मुस्लिम हितों का प्रतिनिधित्व एक मुस्लिम पार्टी ही कर सकती है और कांग्रेस एक हिन्दू दल है। परन्तु जिन्ना की जिद थी कि लीग को मुसलामानों का 'एकमात्र प्रवक्ता' माना जाये जो उस दौरान बहुत कम लोगों को ही स्वीकार था। लीग संयुक्त प्रांत, बम्बई और मद्रास में ही लोकप्रिय था परन्तु उसका सामाजिक आधार बंगाल में काफी कमजोर था, जिसके आधार पर कांग्रेस द्वारा मुस्लिम लीग के प्रस्ताव को खारिज कर दिया गया था।

"हिन्दू महासभा की स्थापना 1915 ई. में हुई। यह एक हिन्दू पार्टी थी जो उत्तर भारत तक ही सीमित थी। यह पार्टी हिन्दुओं के बीच जाति एवं सम्प्रदाय के फर्क को खत्म करने का काम करती थी और हिन्दू समाज में एकता पैदा करने की कोशिश करती थी। हिन्दू महासभा, हिन्दू अस्मिता को मुस्लिम अस्मिता के विरोध में परिभाषित करने का प्रयास करती थी।"[18]

मौलाना आज़ाद ने 1937 ई. में यह सवाल उठाया कि कांग्रेस के सदस्यों को लीग में शामिल होने की छूट तो नहीं है परन्तु उन्हें हिन्दू महासभा में शामिल होने से नही रोका जाता। इस सवाल के कारण

कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने दिसम्बर 1938 ई. में यह ऐलान किया कि कांग्रेस के सदस्य हिन्दू महासभा के सदस्य नहीं हो सकते क्योंकि उनका विश्वास था कि भारत-केवल हिन्दुओं का देश है। जबकि भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है। पाकिस्तान की स्थापना की मांग धीरे-धीरे ठोस रूप ले रही थी। 23 मार्च 1940 में मुस्लिम लीग ने भारतीय उपमहाद्वीप के मुस्लिम बहुल इलाकों के लिए स्वायत्तता की मांग का प्रस्ताव पेश किया। कुछ लोगों का मानना है - "पाकिस्तान के गठन की माँग उर्दू कवि मोहम्मद इकबाल से शुरू होती है जिन्होंने 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्तान हमारा' लिखा था। 1930 ई. में मुस्लिम लीग के अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण देते हुए उन्होंने 'उत्तर पश्चिमी भारतीय मुस्लिम राज्य' की जरूरत पर मुख्य रूप से जोर दिया था।"[19]

"पाकिस्तान (पंजाब, अफगान, कश्मीर, सिंध और बलूचिस्तान) नाम केम्ब्रिज के एक पंजाबी मुसलमान छात्र चौधरी रहमत अली ने 1933 और 1935 में लिखित दो पर्चों में गढ़ा। रहमत अली इस नई इकाई के लिए अलग राष्ट्रीय हैसियत चाहता था। 1931 के दशक में किसी ने रहमत अली की बात को गंभीरता से नहीं लिया। यहाँ तक कि मुस्लिम लीग और अन्य मुस्लिम नेताओं ने भी उसके इस विचार को केवल एक छात्र का स्वप्न समझकर खारिज कर दिया।"[20] प्रारम्भ में मुस्लिम नेताओं द्वारा एक संप्रभु राज्य पाकिस्तान की मांग विशेष संजीदगी से नहीं उठाई थी। स्वयं जिन्ना भी पाकिस्तान की सोच को सौदेबाजी में एक पैंतरे के तौर पर प्रयोग कर रहे थे, जिससे वे सरकार द्वारा कांग्रेस को मिलाने वाली रियासतों पर रोक लगाने और मुसलमान के लिए और रियासतें हासिल करने के लिए प्रयोग कर सकते, परन्तु कुछ समय के पश्चात मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की अपनी माँग को गति में लाने का फैसला किया। मुस्लिम लीग के 1940 ई. में रखे गए प्रस्ताव की मांग थी कि- "भौगोलिक दृष्टि से सटी हुई इकाइयों को क्षेत्रों के रूप में चिह्नित किया जाए, जिन्हें बनाने में जरूरत के हिसाब से इलाकों का फिर से ऐसा समायोजन किया जाये

कि हिन्दुस्तान के उत्तर पश्चिम और पूर्वी क्षेत्रों जैसे जिन हिस्सों में मुसलामानों की संख्या ज्यादा है, उन्हें इकठ्ठा करके 'स्वतंत्र राज्य' नाम दिया जाये जिसमें शामिल इकाइयाँ स्वाधीन और स्वायत्त होंगी।"[21]

16 अगस्त 1946 ई. को पाकिस्तान की मांग को मुस्लिम लीग ने प्रत्यक्ष कार्यवाही करने का फैसला लिया। 16 अगस्त 1946 ई. को 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस मानाने की घोषणा की गयी। उसी दिन कलकत्ता में दंगा भड़क उठा। यह दंगा कई दिनों तक चला और उसमें कई हजार लोग मारे भी गए थे। मार्च 1947 तक यह दंगा उत्तर भारत तक पहुँच गया और उत्तर भारत के बहुत सारे भागों में हिंसा फैला रही थी। कलकत्ता और नोआखली में जनसंहार हो रहे थे। विभाजन का सबसे खूनी और विनाशकारी रूप पंजाब में देखने को मिला। पश्चिमी पंजाब से सभी हिन्दुओं और सिक्खों को भारत की तरफ हांक दिया गया और पंजाबी भाषी मुसलामानों को पाकिस्तान की ओर उखाड़ फेंका गया। बंगाल में यह पलायन अधिक लम्बे समय तक चलता रहा। लोग अन्तराष्ट्रीय सीमा के पास लगातार जाते रहे। बंगाल विभाजन का आधार धर्म को बनाया गया। बहुत सारे बंगाली हिन्दू पूर्वी पाकिस्तान में जबकि बहुत सारे बंगाली मुसलमान पश्चिम बंगाल में ही रहे। आख़िरकार, बंगाली मुसलामानों ने अपनी राजनीतिक नींव के जरिये जिन्ना के द्वि-राष्ट्र सिद्धांत को नकार दिया और पाकिस्तान से अलग होने का फैसला लिया। परिणामतः 1971-72 ई. में बांग्ला देश की स्थापना हुई।

"9 अगस्त 1942 में महात्मा गाँधी द्वारा 'भारत छोड़ो आन्दोलन' की शुरूआत की गयी। यह स्वतंत्रता संग्राम की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। 14 जुलाई 1942 को वर्धा में कांग्रेस कार्य समिति की बैठक हुई थी जिसमें 'अग्रेजों भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित हुआ। 8 अगस्त 1942 को कांग्रेस की बम्बई के ग्वालियाँ टैंक मैदान में बैठक हुई जिसमें 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव को मंजूरी मिली थी। महात्मा गाँधी ने 'करो या मरो' का नारा दिया और आन्दोलन की घोषणा के 24 घंटे के भीतर सभी बड़े नेता गिरफ्तार कर लिए गए। महात्मा गाँधी जी को पुणे के 'आगाखान पैलेस' में रखा गया। अरुणा आसफ अली ने 9 अगस्त को

मुंबई में तिरंगा फहराया। अंग्रेजों की तमाम कोशिशों के बावजूद भी कई राष्ट्रीय नेता गिरफ्तार नहीं हो पाए, इनमें क्रांतिकारी अरुणा आसिफ अली भी शामिल थी। इस आन्दोलन का नेतृत्व करने हेतु जनता के बीच से नेता उभरकर सामने आये। जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया, सुचिता कृपलानी जैसे नेताओं ने भूमिगत रहकर आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किया। उषा मेहता तथा उनके अन्य साथियों ने कई महीनों तक कांग्रेस रेडियो का प्रसारण किया। लोग ब्रिटिश शासन के प्रतीकों के खिलाफ प्रदर्शन करने सड़कों पर निकल पड़े और सरकारी इमारतों पर तिरंगा फहराना शुरू कर दिया। 1942 से पहले ही भारत छोड़ो आन्दोलन की नींव पड़ी थी।'[22]

द्वितीय विश्वयुद्ध (1943) से बने माहौल के कारण आन्दोलन ने जोर पकड़ा था इसके बाद विश्व दो ध्रुवुओं (मित्र राष्ट्र और धुरी राष्ट्र) में बंट गया था। 1939 में अमेरिका, सोवियत संघ और ब्रिटेन मित्र राष्ट्र में शामिल हुए थे और धुरी राष्ट्र में जर्मनी, इटली और जापान प्रमुख शक्तियां शामिल थी। आधुनिक भारत के निर्माण में दुनिया भर में नागरिक अधिकारों, आंदोलनों को प्रेरित किया। अन्तराष्ट्रीय मंच पर गाँधी जी के द्वारा भारत एक परिपक्व राष्ट्र के रूप में उभरा। दक्षिण अफ्रीका में नस्लवाद के खिलाफ उन्होंने नेतृत्व किया। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में विदेशी बहिष्कार का एक लम्बा और महत्वपूर्ण इतिहास रहा है। इस प्रकार यह ब्रिटिश शासन को समाप्त करने का प्रमुख कारक बन गया। 1947 ई. में ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य को दो स्वतंत्र प्रभुत्वों में विभाजित किया गया, जिसकी आधारशिला धर्म को बनाया गया। परिणामतः भारतीय अधिराज्य और पाकिस्तान अधिराज्य अस्तित्व में आया। 15 अगस्त 1947 ई. में भारत ने अंग्रेजी शासन से पूर्णतः स्वतंत्रता प्राप्त की। इस विशाल देश को दो भागों में विभाजित करके दोनों को सर्वप्रभु सत्ता संपन्न स्वतंत्र राष्ट्र बने थे इसलिए यह घोषणा की गयी थी कि जून 1948 से पहले-पहले सत्ता के सूत्र को भारतीय नेताओं को सौंप दिया जायेगा और इस घोषणा के साथ ही दो स्वतंत्र देशों की स्थापना का सिलसिला शुरू हो गया। "स्वतंत्र पाकिस्तान 14 अगस्त को अपने अस्तित्व में आ गया

था। दोनों देशों के बीच सीमा रेखा 17 अगस्त को खींची गयी थी, परन्तु 15 अगस्त, 1947 के दिन ही लाल किले पर तिरंगा फहरा दिया गया। इन सीमा रेखाओं की निशानदेही सीमा आयोग के अध्यक्ष सर सिरिल रैड्क्लिफ द्वारा खींची गयी। रेडक्लिफ एक ऐसा शख्स था जिन्हें भारत की संस्कृति, भूगोल, धर्म, जातियों के विषय में कुछ भी जानकारी नहीं थी। इस निशानदेही का परिणाम यह हुआ कि एक 'यूनियन ऑफ़ इण्डिया' और 'डोमिनियन ऑफ़ पाकिस्तान' नाम से विश्व के सामने अस्तित्व में आया। उसके उपरान्त 26 जनवरी 1950 ई. में भारत एक गणराज्य बना।"[23]

भारत एक बहुजातीय और बहुधार्मिक राष्ट्र है। भारत को समय-समय पर साम्प्रदायिक तथा जातीय विद्वेष का शिकार होना पड़ा है। देश के अलग-अलग हिस्सों में क्षेत्रीय असंतोष तथा विद्रोह होते रहे हैं। भारत के पड़ोसी देशों के साथ प्रायः सीमा विवाद होते रहते हैं।

बंगाल विभाजन : देश-विभाजन का बीजारोपण

बंगाल विभाजन देश विभाजन का बीजारोपण है। दूरदर्शी अंग्रेजों द्वारा बंगाल विभाजित करके भारत विभाजन का बीज बोया गया था। ब्रिटिश सरकार की नीति 'विभाजन' की थी। विभाजन बंगाल के विभिन्न भागों में रहने वाले हिन्दू-मुस्लिम की अधिकतम संख्या पर आधारित थी। अंग्रेजों के द्वारा यह झूठा प्रचार होता रहा कि बंगाल विभाजन मुस्लिमों की मांग थी जबकि 'नेशनल मोहम्दन मूवमेंट' की कलकत्ता में बंगाल विभाजन के प्रति पूर्ण असहमति थी। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अंग्रेजों द्वारा कुछ फैसले लिए गए थे, जिसका भारत की स्वतंत्रता में अभूतपूर्व योगदान रहा। अंग्रेजों द्वारा बंगाल तोड़ने का निर्णय 'बंग-भंग' के नाम से जाना जाता है। यह देश में एक नई क्रांति की लहर लेकर आई। 'बंगाल विभाजन का निर्णय ब्रिटिश वायसराय लार्ड कर्जन के द्वारा लिया गया था, जिसका भरी विरोध तत्कालीन राष्ट्रवादी नेताओं ने किया। '16 अक्टूबर 1905 ई. को बंगाल का विभाजन हुआ। परिणामतः देश को बहुत बड़े परिवर्तन का सामना करना पड़ा था। इस विभाजन से राष्ट्रीय स्तर पर ब्रिटिश सरकार के खिलाफ

असंतोष फ़ैल गया। हिन्दुओं ने इस विभाजन का विरोध करते हुए हिंसक और अहिंसक आन्दोलन भी किये। बंगाल विभाजन का मुद्दा पहली बार 1903 ई. में उठा था।'[24]

ब्रिटिश वायसराय ने बंगाल के पूर्वी जिलों का दौरा किया और आम जनमत के विचारों से अवगत हुआ। ब्रिटिश वायसराय लार्ड कर्जन ने बंगाल के कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों से बंगाल विभाजन के मुद्दों पर बात की। उन्होंने बंगाल विभाजन पर सरकार का पक्ष समझाते हुए एक भाषण में कहा कि ब्रिटिश राज के अंतर्गत बंगाल, फ्रांस जितना बड़ा है, इसकी जनसँख्या ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस को मिलाकर जितनी है, इस कारण इसे तोड़ने से प्रशासनिक प्रगति होगी। ब्रिटिश सरकार द्वारा बंगाल में शामिल पांच हिंदी भाषी राज्यों को मिलाकर एक केंद्र में सेंट्रल प्रोविंस बनाने की योजना थी। इसके बदले पश्चिम क्षेत्र में 5 उड़िया भाषी राज्य सेंट्रल प्रोविंस से मिलने वाले थे। इससे बंगाल का क्षेत्र विस्तार हो जाता तथा बंगाल की जनसंख्या में भी वृद्धि हो जाति। हालांकि पश्चिम में बंगाली बोलने वालों की संख्या अधिक थी और बिहार और उड़िया बोलने वालों की संख्या काफी कम थी। इस नए प्रान्त के प्रशासन में एक विधान परिषद्, दो सदस्यों के राजस्व बोर्ड और कलकत्ता उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को निर्विवाद छोड़ देने की योजना थी। ब्रिटिश सरकार ने पूर्वी बंगाल और असम को अस्पष्ट रूप से पश्चिमी सीमा में शामिल करने का निर्णय लिया। इसकी भौगोलिक जातीय, भाषायी और सामाजिक विशेषताओं की सीमा तय की। 19 जुलाई 1905 में बंगाल और विस्थापन के प्रस्ताव पर निर्णय जारी रहा और इस प्रकार 1905 ई. को भारत के महत्वपूर्ण हिस्से का विभाजन हुआ।

लार्ड कर्जन ने कहा- "बंगाल एक शक्तिशाली राज्य है। बंगाल विभाजन से बंगालियों में भी कई प्रकार का विभाजन हो जायेगा। वास्तव में बंगाली समुदाय ही पहला वर्ग है, जिसने अंग्रेजी शिक्षा का लाभ उठाया था। समस्त बुद्धिजीवी और सिविल सर्विसेज में जाने वाले लोगों में भी बंगाली समुदाय की प्रधानता थी। इसी तरह सरकारी महकमों में भी बंगालियों की प्रधानता थी। इस तरह बंगाल के विभाजन से उनका

प्रभाव कम होना स्वाभाविक था। इससे राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे संघर्ष में भी विभाजन हो गया था। बंगाली जो खुद को एक राष्ट्र मानते थे, वो अपने ही प्रोविंस में भाषा संबंधी अल्प समुदाय में शामिल नहीं होना चाहते थे। हिन्दू जो अल्पसंख्यक में होकर भी प्रभावशाली थे और मुस्लिम बहुल होने पर भी उनकी प्रभाविता नहीं थी। इसलिए हमने हिन्दू-मुस्लिम को एक दुसरे के सामने लाने की सोची। यूनाइटेड प्रोविंस की राजधानी कलकत्ता अब भी ब्रिटिश इण्डिया की राजधानी थी, जिसका मतलब था बंगाली ही ब्रिटिश शक्ति का केंद्र थे। इसके अलावा बंगाली मुसलामानों को हमारा वफादार माना जाता है, क्योंकि उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ 1857 की क्रांति में भाग नही लिया।"[25]

'बंग-भंग' घोषणा से बंगाली समुदाय ने अंग्रेजों के खिलाफ अपना रोष व्यक्त करना शुरू कर दिया। बंगाल के पूर्व लेफ्टिनेंट गवर्नर सर अन्द्र्यु फेंसर ने बंगाल विभाजन का विरोध करने वाले क्रांतिकारियों पर हमला किया। देखते ही देखते यह बंग-भंग विरोध के आन्दोलन का स्वर पूरे देश में गूँज उठा।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अमार सोनार बांग्ला लिखा। यह बंग-भंग के विरोध में लिया गया था। यह कालांतर में 1972 ई. से बांग्लादेश का राष्ट्रीय गान बना। बंकिम चन्द्र चटर्जी ने 1905 ई. में 'वन्दे मातरम' लिखा। यह गीत क्रांतिकारियों के लिए राष्ट्रगीत बन गया था। बंगाल के क्रांतिकारियों के लिए बंगाल पवित्र भूमि थी क्योंकि वहां माता काली की पूजा होती थी। माता काली को विनाश की देवी माना जाता है, इसलिए क्रांतिकारियों द्वारा अपने हथियार उन्हें सपर्पित कर दिए थे। बंगाल विभाजन देश में कई क्रांतिकारियों को उभारता है। इन क्रन्तिक्ररियों में तीन नाम मुख्य हैं, जिनमें लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक, बिपिन चन्द्र पाल शामिल हैं। इन्हें 'लाल-बाल-पाल' के नाम से भी जाना जाता है। बाल गंगाधर तिलक ने नारा भी दिया था –"स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, इसे हम लेकर रहेंगे।' बंगाल विभाजन के दौरान ही देश में दो दलों 'गरम दल' और 'नरम दल' का भी गठन हुआ, जिनमें से गरम दल का प्रतिनिधित्व ये तीनों नेता ही कर रहे थे। 17 फरवरी 1904 ई. को रिसले महोदय ने अपने पत्र में कहा

था- "सभ्यता, आदत, परंपरा, भाषा को देखते हुए विभाजन पर बंगाल के पूर्वी जिलों में विभाजन पर जनता की राय का आकलन करने के लिए अधिकाधिक दौरे करने हैं। परन्तु मुसलमानों ने इसका विरोध किया तो 'लार्ड कर्जन' ने मुसलमानों की असहमति पर उन्हें समझाते हुए यह बताया था कि हमारा उद्देश्य प्रशासकीय सुविधा देने के साथ ही, एक अलग मुस्लिम प्रान्त जहाँ इस्लाम के अनुयायियों का बोल-बाला हो, जहाँ मुसलमानों की एकता को बढ़ावा देना है।"[26]

ब्रिटिश सरकार का एकमात्र उद्देश्य प्रभाव की दृष्टि से एकमात्र बंगाल विभाजन का कार्य नितांत धूर्ततापूर्ण व षड्यंत्र था। परिणामतः 16 अक्टूबर 1905 ई. को भारतवासियों ने बंगाल विभाजन के कारण 'शोक दिवस और संकल्प दिवस' के रूप में मनाया था। इस प्रकार सर्वप्रथम 1903 में बंगाल विभाजन के बारे में सोचते हुए, चटगाँव, ढाका और नीमन सिंह के जिलों को अलग कर असम प्रान्त में मिलाने का प्रस्ताव रखा गया। सन 1903 में कांग्रेस का उन्नीसवें अधिवेशन के सभापति श्री 'लाल मोहन घोष' ने मद्रास में इस सरकार की प्रतिक्रियावाद नीति की खुलकर आलोचना की। बंग भंग के विरुद्ध बहुत भारी आन्दोलन हुआ, जिसमें देश के प्रसिद्ध कवियों और साहित्यकारों द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई गयी। "सन 1911 के 12 दिसम्बर को दिल्ली में एक दरबार के दौरान सम्राट पंचम जॉर्ज, साम्राज्ञी मैरी तथा भारत सचिव लार्ड क्रू आये थे और राजकीय घोषणा के माध्यम से पश्चिमी और पूर्वी बंगाल के बंगला भाषी इलाकों को एक प्रान्त में लाने का आदेश जारी किया जिससे राजधानी कलकत्ता को हटाकर नई राजधानी दिल्ली को बनाया गया।"[27] भारत का स्वंतंत्रता आन्दोलन राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर उत्तेजनाओं, आह्वानों तथा प्रयत्नों से प्रेरित भारतीय राजनैतिक संगठनों द्वारा संचालित अहिंसावादी आन्दोलन था, जिसका एकमात्र उद्देश्य अंग्रेजी शासन से भारतीय उपमहाद्वीप को स्वतंत्र करना था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा 1929 लाहौर के अधिवेशन में अंग्रेजों से पूर्ण स्वराज्य की मांग की।

बांग्ला देश : जन्म और जंग

1947 तक भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश भौगोलिक, राजनीतिक, और सांस्कृतिक तौर पर एक राष्ट्र थे। धर्म और भाषायी आधार पर विभाजन की शुरूआत हुई। किसी भी देश की जमीन के विभाजन के साथ ही लोगों की भावनाओं का भी विभाजन होता है। काल प्रवाह के कुछ ऐसे एतिहासिक क्षण जो अपनी छाप परवर्ती युगों तक छोड़ जाते हैं। विभाजन का क्षण मानवीय संबंधों को लगभग नष्ट कर देने वाला था। भारत अपने पड़ोसी देशों के साथ सदैव से सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध की कामना रखता है। अपनी अखंडता और संप्रभुता को बनाये रखने हेतु, भारत कभी भी किसी पड़ोसी मुल्कों को दबाने या क्षेत्र विस्तार की महत्वाकांक्षा नहीं रखता। जब भी पड़ोसी मुल्क को आवश्यकता पड़ी, भारत ने बड़ी ही उदारता के साथ एक कदम बढ़कर मदद की, चाहे वह आर्थिक संकट, मानवाधिकार के मामले या फिर गृह युद्ध हों। भारत सदैव ही एक सक्षम पड़ोसी की भूमिका में खड़ा रहा है।

1947 के भारत पाकिस्तान विभाजन के फलस्वरूप बंगाल भी दो हिस्सों में बंट गया। इसके हिन्दू बहुल इलाकों को भारत के हिस्से में जोड़ा गया, जिसे पश्चिम बंगाल के नाम से जानते हैं तथा मुस्लिम बहुल इलाकों (पूर्वी बंगाल) को पाकिस्तान के हिस्से में शामिल किया गया, जो पूर्वी पाकिस्तान के नाम से जाना गया। विभाजन के आधार पर विस्थापन का दंश किसी भी राष्ट्र की राजनीतिक सच्चाई को दर्शाता है। धार्मिक बहुसंख्यक के आधार पर विभाजन का फैसला हुआ। इसके मायने यह थे कि जिस क्षेत्र में एक धर्म की बहुसंख्या थी उस भू-भाग पर उस धर्म का आधिपत्य होगा। ब्रिटिश भारत में कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं था, जहाँ मुसलमान बहुसंख्यक न हों। मुसलमान बहुसंख्यकों का एक क्षेत्र पश्चिम में था तो दूसरा क्षेत्र पूर्व में था। दोनों क्षेत्रों को एक करने का कोई उपाय नहीं था, जिसके कारण एक पश्चिमी पाकिस्तान तथा दूसरा पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान बांग्लादेश) के नाम से जाना जाता है।

'पश्चिमी पाकिस्तान द्वारा पूर्वी पाकिस्तान के लोगों की उपेक्षा की जाती थी। पूर्वी पाकिस्तान के लोगों को अपने अधिकारों के लिए तरसना पड़ रहा था। जमींदारी प्रथा ने पूर्वी पाकिस्तान के क्षेत्र को बुरी तरह झकझोर रखा था जिसके खिलाफ 1950 ई. में एक बड़े आन्दोलन की शुरूआत हुई और 1952 के 'बांग्ला भाषा आन्दोलन' के साथ जुड़कर यह बांग्लादेशी गणतंत्र की दिशा में एक आंदोलन बन गया। 1948 ई. में 'उर्दू' को पाकिस्तान की राष्ट्रीय भाषा का दर्जा प्राप्त हुआ। बांग्ला भाषी लोगों में इसे लेकर गुस्सा भड़क उठा तथा 1955 ई. में पाकिस्तान सरकार ने पूर्वी बंगाल का नाम बदलकर पूर्वी पाकिस्तान कर दिया था। ढाका में छात्रों के एक बड़े समूह ने बांग्ला को बराबरी का दर्जा देने हेतु बड़े स्तर पर विरोध प्रदर्शन किया। जिससे कई निर्दोष लोगों की मौत हुई थी, जिसके कारण बांग्ला आंदोलन हिंसक हो गया था। इस आंदोलन ने भाषायी पहचान को लेकर अलग देश की मांग के बीज बो दिए। इस आंदोलन ने बंगाल की राष्ट्रीय अस्मिता को जन्म दिया और फिर शुरू हुआ अलग राष्ट्र बनाने की मांग। 1970 में हुए पाकिस्तान के आम चुनाव ने बांग्लादेश के आम लोगों को अलग राष्ट्र बनाने को मजबूर कर दिया। इस चुनाव के नतीजों ने विघटन तय कर दिया। पश्चिम पाकिस्तान ने आवामी लीग को मिली सबसे ज्यादा सीट के चुनाव नतीजों को मानने से इनकार कर दिया। इसके खिलाफ 7 मार्च 1971 को ढाका में विशाल रैली का आयोजन किया गया।'[28]

विशाल रैली आयोजन का परिणाम यह हुआ कि बांग्ला 'मुक्ति संग्राम' की शुरूआत हुई, तत्पश्चात 'बांग्लामुक्तिवाहिनी' का गठन हुआ। बांग्लादेश का स्वाधीनता आंदोलन शुरू हुआ। पाकिस्तानी फौज की दमनात्मक कार्रवाई की शुरूआत हुई, जिसके कारण लाखो की संख्या में लोग भारत की सीमा में घुसने लगे, इस दौरान पाकिस्तान ने भारत के कई हिस्सों पर हमला किया। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने बांग्लादेश की लड़ाई को भारत की लड़ाई के रूप में लिया और बांग्लादेशी शरणार्थियों को भारत में शरण दी। 1970-71 ई. में शेख मुजीबुर खान के नेतृत्व में बांग्लादेश की स्वायत्तता का आन्दोलन प्रारम्भ हो

गया। पूर्वी-पाकिस्तान अर्थात बांग्लादेश की जनता पूर्णतः मुजीबुर खान के साथ हो गयी। पाकिस्तानी राष्ट्रपति अय्यूब खान ने बंगालियों पर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया जिससे घबराकर बहुत से बांग्लादेशी अपना घर बार और सामान छोड़ कर भारत की सीमा में प्रवेश करने लगे। भारत में धीरे-धीरे इनकी संख्या एक करोड़ तक पहुँच गयी जिसके कारण भारत में शरणार्थी संकट बढ़ गया। ऐसे में भारत सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को मानवाधिकार का हवाला दिया कि बांग्लादेश के नागरिकों को पाकिस्तान के जुर्म से बचाया जाये।

'मार्च 1971 ई. में इंदिरा गाँधी द्वारा पूर्वी पाकिस्तान की मदद देने का ऐलान किया गया। जुलाई 1971 में संसद में सार्वजानिक रूप से मदद की घोषणा की गयी थी। भारतीय सेनाओं द्वारा पूर्वी पाकिस्तान के मुक्तिवाहिनी सैनिकों को सहायता और प्रशिक्षण दिया गया। भारत देश ने 'सयुक्त राष्ट्र संघ' से पूर्वी पाकिस्तान में चल रहे नरसंहार व दमन के शोषण पर हस्तक्षेप करने की मांग की। कई देशों ने इसका विरोध भी किया, फिर भी पूर्वी पाकिस्तान की सहायता भारत ने की। 2 दिसम्बर 1971 को पाकिस्तानी वायुसेना ने भारत के हवाई अड्डों पर भीषण बमबारी की शुरूआत कर दी। फलतः 4 दिसम्बर 1971 ई. को भारतीय सेना ने जबाबी कार्यवाही प्रारम्भ कर दी। शांति स्थापित करने के भारत के लगातार प्रयास के बावजूद भी पाकिस्तान अपनी दमनकारी नीतियों का अंत नहीं कर रहा था, जिसके कारण भारत को इस लड़ाई में सीधे तौर पर शामिल होना पड़ा। इसके साथ ही 1971 ई. में भारत-पाकिस्तान युद्ध की शुरूआत हो गयी। परिणामतः पाकिस्तान के अधिकतर वर्गमील भूमि पर भारत ने अधिकार कर लिया। अंततः 16 दिसम्बर 1971 ई. में ढाका में एक सैनिक सामारोह में पाकिस्तान के जनरल नियाज ने लेफ्टिनेंट जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया। उसके साथ ही तिरानवे हजार सैनिकों ने भी हथियार डाल दिए।'[29]

पाकिस्तान, चीन, अमेरिका और इस्लामिक देश बांग्लादेश गठन के खिलाफ थे, परन्तु भारत ने पूर्वी पाकिस्तान को पूरा सहयोग दिया। बांग्लादेश के बनने में भारत ने अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर मानवता का धर्म निभाया। इस प्रकार 16 दिसम्बर 1971 ई. को स्वतंत्र बांग्लादेश का उदय हुआ।

किसी देश की जमीन के विभाजन के साथ ही लोगों की भावनाओं का भी विभाजन होता है जिसके कारण बहुत कुछ टूट जाता है। ब्रिटिश सरकार भारत को धर्म के आधार पर दो हिस्सों में बांटने के प्रयास में सफल रही जिसके कारण भारत को विभाजन का विष पीना पड़ा और दुनिया के नक्शे पर पकिस्तान की दस्तक हुई। 15 अगस्त को दंगों का दूसरा दौर आरम्भ हुआ और यह दुनिया के सबसे बड़े विस्थापन का सच बन कर सामने आया, जो नरसंहार की गाथा को दर्शाती है। भारत के स्वतंत्र होने के बाद भी अनेक लोगों को यह भी नहीं पता था कि वह भारत में हैं या पाकिस्तान में हैं। पंजाब और बंगाल का बंटवारा विभाजन की सबसे बड़ी त्रासदी साबित हुआ। विभाजन की सबसे बड़ी कठिनाई अल्पसंख्यकों की थी। सीमा के दोनों तरफ अल्पसंख्यक ही थे। भारत-पाकिस्तान विभाजन के पश्चात जो क्षेत्र पाकिस्तान के हिस्से में गया वहाँ लाखों की संख्या में हिन्दू और सिक्ख समुदाय की आबादी थी, ठीक इसी प्रकार पंजाब और बंगाल के भारतीय भू-भाग पर लाखों की संख्या में मुसलमान थे। इन सभी लोगों को अपने ही घर में विदेशियों जैसा अनुभव होने लगा। जैसे ही यह बात साफ़ हुई कि देश का बंटवारा होगा, दोनों ही जगह पर अल्पसंख्यकों पर हमला होने लगा। किसी को भी अनुमान नहीं था कि यह हिंसा का रूप धारण कर लेगा। यह हिंसा राजनेताओं के हाथ से बेकाबू हो रही थी। उनके पास हिंसा को काबू करने की कोई योजना नहीं थी। अधिकतर अल्पसंख्यकों को अपना घर चंद घंटों की मोहलत के भीतर खाली करना पड़ा। इस प्रकार 1947 ई. में बड़े पैमाने पर एक जगह की आबादी दूसरे जगह जाने को मजबूर हुई थी। धर्म के नाम पर एक समुदाय के लोगों ने दूसरे समुदाय के लोगों को बेरहमी से मारा था। लाहौर, अमृतसर और कलकत्ता जैसे शहर साम्प्रदायिक अखाड़े में तब्दील हो गए थे। जिन इलाकों में हिन्दू अथवा सिक्ख आबादी थी वहाँ

मुसलामानों ने जाना छोड़ दिया और जहाँ मुस्लिम आबादी थी, वहाँ हिन्दू और सिक्ख नहीं गुजरते थे। लोग अपना घर बार छोड़ने के लिए विवश हो गए। वे सीमा के एक तरफ से दूसरी तरफ गए और इस क्रम में लोगों को बड़ी से बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा। भारत व पाकिस्तान के हिस्से से अल्पसंख्यक अपने घरों से भाग खड़े हुए और अस्थाई तौर पर उन्हें शरणार्थी शिविरों में पनाह लेनी पड़ी। कल तक जो लोगों का अपना वतन हुआ करता था, वहीं की पुलिस अथवा स्थानीय प्रशासन अब इन लोगों के साथ रुखाई का बर्ताव कर रहे थे। लोगों को सीमा से दूसरी ओर जाना पड़ा, उन्हें हर हाल में जाने के लिए दबाव डाला जाता था। लोगों ने पूरी दूरी पैदल चलकर तय की। सीमा के दोनों ओर हजारों की तादाद में औरतों को अगवा कर लिया गया। औरतों से जबरन धर्म परिवर्तन कराया गया और उन्हें शादी करने को मजबूर किया गया।

कई मामलों में यह देखा गया कि खुद परिवार के लोगों ने अपने घर कुल की इज्जत बचाने के नाम पर घर की बहू-बेटियों को मार डाला। बहुत से बच्चे अपने माँ-बाप से बिछुड़ गए। जो लोग सीमा पार करने में किसी तरह सफल रहे उन्होंने पाया कि अब वे बे-ठिकाना हो गए हैं। ऐसे में उन्हें महीनों और कभी-कभी सालों तक किसी शरणार्थी शिविर में जिंदगी काटनी पड़ी थी। यह बंटवारा वित्तीय संपदा के साथ-साथ टेबल, कुर्सी, टाइपरायटर और पुलिस के वाद्ययंत्रों तक का हुआ था। सरकारी और रेलवे कर्मचारियों का भी बंटवारा था। 1947 का वर्ष हिंसा व त्रासदी का वर्ष माना जाता है। यह एक ऐतिहासिक वर्ष था जो लोगों के विस्थापन से होने वाली अनेक समस्याएँ लेकर आया था।

विस्थापन की अवधारणा

विस्थापन से अभिप्राय एक स्थान परिवेश से दूसरे में बलपूर्वक स्थानान्तरण किया जाना है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि विस्थापन जबरदस्ती स्थानांतरण है। यह एक भौतिक परिवेश से नए भौतिक परिवेश में बलपूर्वक स्थानांतरण है जिसमें नया परिवेश, आर्थिक, सामाजिक, या सांस्कृतिक

कारणों से हो सकता है, जो किसी भी व्यक्ति या समुदाय के लिए प्रासंगिक जानकारी हो सकता है। सामाजिक विज्ञान के संदर्भ में विस्थापन के दो तरह के पहलुओं को देखते हैं। पहले अर्थ में प्रवास के तौर पर समझा जाता है, जबकि दूसरे अर्थ में इसका अभिप्राय विस्थापन है। दोनों शब्द एक दूसरे के पूरक माने जाते हैं परंतु दोनों के भावार्थ एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। प्रवास से अभिप्राय स्वैच्छिक स्थानांतरण है, एक स्थान को छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर बसने से है। मानव अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्थानांतरण करता है। भारत में बड़ी संख्या में मानव बेहतर अवसर की तलाश में भिन्न-भिन्न स्थानों में प्रवास करते हैं जन्म दर और मृत्यु दर के अतिरिक्त एक और घटक है जो जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करता है जिसे प्रवास कहा जाता है। "विस्थापन शब्द अंग्रेजी भाषा के 'डिस्प्लेसमेंट' शब्द से बना है जिसका अर्थ है अपना स्थान परिवर्तित करना तथा बलपूर्वक स्थान परिवर्तन की ओर इंगित करना। जब कोई व्यक्ति अथवा समूह किसी भी कारण से अपने स्थायी स्थान से हटा दिया जाता है तो इस प्रक्रिया को विस्थापन कहते हैं, जबकि हटाये गए व्यक्ति को विस्थापित कहते हैं।"[30]

विस्थापन मूल रूप से एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति परिवार या समूह का अपने जीवन को प्रभावित करने वाले घटकों या फिर प्राकृतिक एवं मानव जनित परिस्थितियों के सामने विवश होकर अपने मूल स्थान से नए स्थान की ओर किया गया स्थानांतरण है। विस्थापन शब्द का अर्थ है अपने मूल रूप से कटना और मौलिक जगह से हटना। कभी-कभी यह परिस्थितिवश होता है तो कभी इसकी आवश्यकता होती है। कभी बिना वजह यह समस्या उत्पन्न की जाती है तो कभी हम इसे श्वेच्छा से अपना लेते हैं। कभी यह हमारी विवशता की परिचायक होती है तो कभी अच्छा जीवन जीने के लिए नए अभियान के रूप में। मनुष्य का पूरा इतिहास इस तथ्य का दस्तावेज है कि वह अपने जीवन-यापन हेतु एक जगह से विस्थापित होकर दूसरी जगह पर चला जाता है। इस प्रकार का विस्थापन मानवीय सभ्यता की प्रगति का आधार स्तंभ माना जाता है। विस्थापन की प्रक्रिया में स्वयं में कुछ ऐसा नहीं है जिससे कोई समस्या उत्पन्न होती है।

यह हमारे दिन प्रतिदिन का अनुभव है कि जब भी व्यक्ति समूह या किसी समुदाय को रोजगार के नए अवसर दिखाई पड़ते हैं तो वह अत्यंत आसानी से अपने पुराने स्थान से इसलिए भी विस्थापित होता है जिससे कि नई जगह स्थापित होकर प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ सकें। मानव का इतिहास इस बात को हमेशा दिखाता है कि छात्रों के हितों के लिए कोई भी समूह या समुदाय अपनी बड़ी से बड़ी और कीमती वस्तु, संपत्ति आदि को छोड़ देने से नहीं हिचकता। आचार्य विनोबा भावे के - 'भूदान यज्ञ' में बड़े-बड़े भू स्वामियों ने अपनी ख़ुशी से स्वयं को अपनी जमीनों से अलग कर लिया, लेकिन अपनी भूमि से इस प्रकार विस्थापित होने पर भी भू-स्वामियों को किसी भी प्रकार का दुख, क्षोभ आदि का अनुभव नहीं होता, बल्कि इससे विपरीत से संबंधित होने का भाव लाने में सहायक होता है।"[31]

पूंजीवाद एवं औद्योगीकरण के आने के साथ विकास के अवसर और पहले से उसकी गति भी बढ़ी। नयी अर्थव्यवस्था पुरानी सामंतवादी अर्थव्यवस्था से गुणात्मक रूप से काफी अलग थी क्योंकि इसमें एक ही स्थान पर अधिक से अधिक लोग एक ही प्रकार का कार्य करते थे। धीरे-धीरे उसके आस पास अन्य कार्य करने हेतु नए उपक्रम लगाये गए और इस तरह से उद्योगों का छोटा रूप एक बड़े क्षेत्र में स्वाभाविक रूप से अस्तित्व में आया। इस तरह यह स्पष्ट है कि ऐसे छोटे उद्योग तभी विकसित हुए होंगे, जब वहां पर बड़े उद्योग लगे होंगे, उनके भू-स्वामी वहां से विस्थापित हुए होंगे। इन उद्योगों में काम करने के लिए निश्चित ही दूसरी जगह से विस्थापित होकर ही आए होंगे। वैसे यह सही है कि विस्थापन की इस प्रकार की घटना अर्थव्यवस्था के विकास के लिए जरूरी थी, लेकिन इससे इतनी समस्यायें उत्पन्न होंगी इस बात से मनुष्य अभी तक परिचित नहीं था। विस्थापन जो अभी तक लगता था विकास के लिए अनिवार्य है वही अब ऐसी समस्याओं का कारण बन गई जिससे न केवल उन व्यक्तियों को परेशान होना पड़ रहा है जो इससे संबंधित है बल्कि उनको भी प्रभावित कर रहा है जो अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े थे। निश्चित ही ऐसी समस्याओं

के कारण के रूप में पूरी तरह से विस्थापन के तथ्य को नहीं माना जा सकता। ऐसी समस्याओं के लिए मूल रूप से कहीं न कहीं ना कहीं पूंजीवादी व्यवस्था और औद्योगीकरण जिम्मेदार हैं।

इसलिए आज के समय में विस्थापन की समस्या की विवेचना के लिए आवश्यक है कि हम सर्वप्रथम 'एलिनेशन' के बारे में जानें जोकि इस समस्या के निहितार्थों को सबसे अधिक सशक्त रूप से करने में पूरी तरह सक्षम हैं, के बारे में शाब्दिक व्युत्पति का विवेचन करें।

बीसवीं सदी में दर्शन, साहित्य, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, और मनोविज्ञान आदि क्षेत्र के बुद्धिजीवियों द्वारा फैशन की सीमा तक प्रयोग होने वाला बहु प्रचलित एकमात्र शब्द यदि कोई है तो वह विस्थापन ही है जो इस सदी के मानवीय यथार्थ चित्रण को सर्वाधिक मुख्य रूप में अभिव्यक्त करता है। इस शब्द के अधिक व्यापक एवं अनियंत्रित प्रयोग के कारण अक्सर लोग इसके विशिष्ट अर्थ एवं संदर्भ के प्रति लापरवाह होते दिखाई देते हैं। शायद यही इसके अधिकाधिक आकर्षण का कारण भी है। अर्नेस्ट गेलनर' ने बिलकुल सही कहा है कि किसी भी अवधारणा को सामान्य रूप से स्वीकार करना उसकी अर्थहीनता, अस्पष्टता विभिन्न संदर्भों में पूर्णतया अलग अर्थ रखने की क्षमता के साथ-साथ इस बात पर भी निर्भर करती है कि यह अपनी विवेचना में निरंतर एक अर्थ रखने का आभास देती है।

'एलिनेशन' शब्द की उत्पत्ति लैटिन की संज्ञा 'एलेनेसियों' से से हुई मानी जाती है जिसका अर्थ क्रिया एलिनेर से निकला माना जाता है। स्वयं 'एलिनेसन' शब्द की उत्पत्ति 'एलीनेस' शब्द से हुई है जिसका अर्थ 'अन्य से संबंधित या दूसरे की संपत्ति होना होता है।'[32] वेबस्टर डिक्शनरी इस शब्द को निम्नलिखित रुप से व्याख्या करती है-

क. हटाने पर विस्थापित करने की प्रक्रिया के रूप में

ख. स्वामित्व के हस्तांतरण: एक अन्य को अपनी संपत्ति देना

ग. वापस लेना या होना, हट जाना, परे होना अपनेपन की स्थिति से निषेध

घ. सामान्य प्रक्रिया से हटने या पड़े होने की स्थिति, सामान्य मानसिक क्रिया की अव्यवस्था

विस्थापन के विविध रूप

विस्थापन के अनेक विविध रूप जो स्पष्ट तौर पर प्रत्येक वर्ष देखा जाता है | इसके उन्नीसवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक कई कारण हो सकते हैं, परन्तु विस्थापन और पलायन आज भी समाज में मौजूद है जो इस प्रकार है-

अंतर्राज्यीय या आंतरिक विस्थापन

अंतर्राज्यीय विस्थापन से अभिप्राय राष्ट्रीय सीमाओं के पार लोगों को जबरदस्ती आप्रवासन से है, जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय कानून में राष्ट्रीय सीमाओं के पार विस्थापित किया जाता है। शरणार्थी कोई भी वह व्यक्ति है जिसे अपना स्थाई निवास स्थान छोड़ने के लिए विवश किया जाता है। इन लाखों विस्थापित लोगों को आम तौर पर असहिष्णुता, उत्पीड़न, राजनीतिक हिंसा, सशस्त्र संघर्ष या मानव अधिकारों के उल्लंघन से बचने का प्रयास करना पड़ता है। शरणार्थी उस व्यक्ति के लिए भी प्रयोग में लाया जाता है जो स्वतंत्रता के पश्चात हुए विभाजन संबंधी घटनाओं के फलस्वरूप प्रजाति, धर्म, खास सामाजिक समूह की राष्ट्रीय सदस्यता या राजनीतिक या उत्पीड़न के भय के कारण अपनी राष्ट्रीयता के देश से बाहर हैं और इस भय के कारण उस देश की सुरक्षा स्वयं पाने में असमर्थ हैं। शरणार्थी जिन देशों में भाग कर जाते हैं और उनसे सुरक्षा की याचना करते हैं वे शरण के देश कहलाते हैं। इन शरण के देशों द्वारा निष्कासन या वापसी के निषेध पर विचार किया जाता है और इन शरणार्थियों को अन्य कई तरह के अधिकार प्रदान किए जाते हैं जैसे अप्रतिरोधकता और अन्य शरणार्थी अधिकार। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आंतरिक विस्थापन शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति या समुदाय के लिए किया जाता है जो अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु या फिर किसी परिस्थितिवश देश की सीमा के अंदर कहीं अन्य स्थान पर विस्थापित होते हैं। "भारत

में पिछले 70 साल में सबसे ज्यादा आंतरिक विस्थापन विकास योजनाओं के कारण हुआ है। भारत में सन 1984 में पंजाब में हुए दंगे, सन 2002 में गुजरात में हुए सांप्रदायिक दंगों की वजह से कई बेगुनाह परिवारों को अपना मूल निवास छोड़कर अन्य देशों में विस्थापित होना पड़ा था।"[33]

राज्यान्तारिक या अस्थायी विस्थापन

'यह वह शरणार्थी व्यक्ति है जो अंतरराष्ट्रीय सीमा पार करता है या अन्य राज्यों में सुरक्षा मांगते हैं बल्कि अपनी राष्ट्रीय सीमाओं के अंदर और अपनी ही सरकार द्वारा सुरक्षा की मांग रखता है। राज्यन्तारिक विस्थापन के दो महत्वपूर्ण तत्व माने जाते हैं।

1. बाध्य या स्वैच्छिक स्थानांतरण
2. अपनी ही राष्ट्रीय सीमाओं के अंदर रहना जिन्हें देशीय विस्थापन भी कहा जाता है। जो अपने देश के अंदर होता है जैसे मनुष्य के मानव अधिकारों का उल्लंघन, मानवीय कष्टदायक दमनकारी शासन तथा सजातीय संघर्ष।

हिंदुस्तान के बंटवारे ने एक हादसे के रूप में भारतीय जनों के लिए जो समस्याएं पैदा की वे हमारे सामने विकट और बहुत भयावह हैं। जिसका परिणाम है- स्वतंत्रता, राष्ट्रीय स्वच्छता, सांप्रदायिकता जातीयता, प्रादेशिकता और आतंकवादी समस्याओं से आज हम घिरे हुए हैं। इतिहास के इस परिप्रेक्ष्य को कारगर ढंग से समझने के विचार से विभाजन के उपन्यास साहित्य को टटोलना बेहतर विकल्प हो सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि उस साहित्य पर दृष्टि डाला जाए जिसमें विभाजनजन्य स्थितियों के साथ ही विस्थापित जनों की मनोदशाओं और विसंगतियों का भावात्मक, संवेदात्मक और वैचारिक साक्ष्य मौजूद है। पलायन और विस्थापन की पीड़ा कितनी हृदय विदारक होती है। इसकी कल्पना मात्र से ही रूह काँप जाती है | इस दर्द का एहसास वही समझ सकता है, जो अपने घर से बेघर होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किसी व्यक्ति या समुदाय का अपने मूल स्थान से दूसरे स्थान पर कुछ निश्चित समय के लिए किया गया स्थानांतरण अस्थायी या स्थानीय विस्थापन कहलाता है। अस्थाई विस्थापन के अंतर्गत मुख्य रूप से मौसमी प्रस्थान गांव से शहर की ओर रोजगार की खोज में किया गया विस्थापन आदि का समावेश होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय विस्थापन

इसके अंतर्गत एक देश की सीमा को पार करके दूसरे देश में पलायन करने की प्रक्रिया को अन्तराष्ट्रीय विस्थापन कहते हैं जो कि वैश्विक प्रक्रिया है इसका मूल कारण आर्थिक विकास माना जाता है। जब व्यक्ति अपने पारंपरिक मूल स्थान को त्यागता है तो उसके सामने अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। संयुक्त राष्ट्र के विभाजन से अंतरराष्ट्रीय विस्थापन एक गंभीर समस्या के रूप में आयी जिसका इतिहास साक्षी है। भारत, वर्मा, पाकिस्तान, बांग्लादेश आदि जैसे देशों ने विभाजन से उत्पन्न विस्थापन का कड़वा घूंट पिया है। दुनिया के सभी देशों के लिए अंतरराष्ट्रीय विस्थापन एक गंभीर समस्या है। इस प्रकार के विस्थापन में "व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह हैं जो सशत्र, प्राकृतिक आपदा या मानवीय आपदा के कारण उत्पन्न परिस्थितियों के प्रभाव से बचने के लिए आवास छोड़ने या देश की अन्तराष्ट्रीय सीमा से बाहर पलायन करने को बाध्य होते हैं।"[34]

इतिहास की दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि मानव संस्कृति का इतिहास और विस्थापन साथ साथ चलने वाली धाराएं हैं। विस्थापन कब हुआ यह अनुमान लगाना कठिन है परंतु रोजी-रोटी की तलाश में एक समुदाय का एक जगह से दूसरी जगह पर जाना युगों पुरानी घटना है। आज के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो हम कह सकते हैं कि समाज कई वर्गों में विभाजित है जिसके कारण उत्पन्न शोषण और उत्पीड़न से विस्थापन अनेक कारणों से देखने को मिलता है। जिनमें वैश्वीकरण, उपनिवेशवाद, आर्थिक संपन्नता-विभिन्नता मुख्य हैं। सामाजिक कारणों से भी विस्थापन की समस्या हमें देखने को मिलती है। विस्थापन

के सामाजिक कारणों में किसी भी देश का दरिद्र्पन व पिछड़ापन, शिक्षा का अभाव, सामाजिक कुरीतियाँ आदि हैं।

इसी प्रकार विस्थापन के आर्थिक कारण हमें देखने को मिलते हैं। आर्थिक अभाव और सुखद जीवन की तलाश में लोग विस्थापित होकर विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करते हैं। अंग्रेजों द्वारा भारतीय कुटीर उद्योगों को समाप्त कर दिया गया और बीसवीं शताब्दी में विज्ञान और औद्योगीकरण का सम्पूर्ण विकास पश्चिम के देशों में हुआ जिससे भारत के लोग वंचित रह गए और शिक्षित और अशिक्षित लोगों की आकांक्षाओं में वृद्धि होती गयी | विस्थापन के सामजिक कारणों की बाते करें तो यहा कहा जा सकता है कि भारत में आजादी के पूर्व दरिद्रता और पिछड़ापन था, शिक्षा का अभाव था, विभिन्न सामाजिक कुरीतियाँ हावी थी, जिससे लोगों में असंतोष की भावना आयी और लोग अपनी जड़ से अलग होकर देश के अलग-अलग हिस्से में विस्थापित हो गए।

सारांशतः हम कह सकते हैं कि- विस्थापन कट्टर और गैर राष्ट्रवादी ताकतों की राष्ट्रवादी ताकतों के साथ सीधी-सीधी जंग का प्रतिफलन है। विस्थापन घर या मात्र जमीन का टुकड़ा छोड़ने से नहीं है। यह घर के साथ पहचान, स्मृतियों की भरी-पूरी जमीन व अस्मिता के प्रश्न से जुड़ा होता हैं। विस्थापितों से जमीन का टुकड़ा ही नहीं छूटता, बल्कि उनकी आस्था के केंद्र और उनका अस्तित्व भी छूट जाता है। वह अपने ही परिवार अथवा सबंधों के मध्य विस्थापित अनुभव करता है।

संदर्भ

1. सिंह, सविन्द्र; भौतिक भूगोल; प्रयाग पुस्तक भवन प्रकाशन, 20-A, यूनिवर्सिटी रोड, पुराना कटरा, इलाहाबाद- 211002; पुनः संशोधित संस्करण, ग्यारहवां; 2020; पृ. 13.
2. वही, पृ. 14
3. मामोरिया, चतुर्भुज; एशिया का प्रादेशिक भूगोल; साहित्य भवन प्रकाशन, 3/20b, तुलसी सिनेमा, संजय नगर, पशुपति कॉलोनी, खंडारी, आगरा- 282003; द्वीतीय संस्करण: 1976; पृ. 11
4. वही, पृ. 12
5. वही, पृ. 11
6. सिंह, सविन्द्र; भौतिक भूगोल; प्रयाग पुस्तक भवन प्रकाशन, 20-A, यूनिवर्सिटी रोड, पुराना कटरा, इलाहाबाद- 211002; ग्यारहवां संस्करण: 2020; पृ. 24.
7. न्यू ऑक्सफोर्ड डिक्सनरी ऑफ़ इंग्लिश; न्यूयोर्क; ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस; ग्रेट कैलेंडर स्ट्रीट ऑक्सफोर्ड, ox26op united kingdom, sixth edition, 2006; पृ. 929.
8. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद; भारतीय इतिहास भाग-1, अध्याय-1; पृ. 11.
9. नेहरु, पण्डित जवाहर; भारत की खोज; एन. सी. आर. टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय से प्रकाशित: नई दिल्ली 110016; संस्करण: 1996; पृ. 7.
10. शर्मा, वीरेंद्र प्रकाश; समाजशास्त्र का परिचय; पंचशील प्रकाशन, 4, चौरा रास्ता, नेहरु बाजार, फिल्म कॉलोनी, मोदीखाना, जयपुर- 302003; प्रथम संस्करण: 2004; पृ. 34.
11. वही, पृ. 38.
12. नेहरु, पण्डित जवाहर; हिन्दुस्तान की कहानी; सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, एन-77, कनोट सर्कस, नई दिल्ली- 110001; संस्करण: 2011, पृ. 377.
13. देशपांडे, भीमराव गोपाल; लोकमान्य तिलक (जीवन चरित्र); राजकमल प्रकाशन, 1-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरयागंज, नई दिल्ली- 110002; प्रथम संस्करण; 2000, पृ. 30-33.
14. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद; भारतीय इतिहास भाग-3, अध्याय-4; पृ. 362 से 367 तक.
15. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद; भारतीय इतिहास भाग-3, अध्याय-5; पृ. 382.
16. वही, पृ. 383
17. वही, पृ. 384

18. वही, पृ. 385.
19. वही, पृ. 386.
20. वही, पृ. 386.
21. वही, पृ. 387.
22. श्री कृष्णदास; स्वंतंत्रता संग्राम के 90 वर्ष इंडियन प्रकाशन, 36, पन्ना लाल रोड, जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद- 211002; प्रथम संस्करण: 1946; पृ. 46.
23. चन्द्र, विपिन; आधुनिक भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद; अनामिका प्रकाशन, 52, जवाहर लाल नेहरु रोड, तुला राम बाग, जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद-211002. द्वितीय संस्करण: 2005; पृ. 112
24. बंगाल विभाजन का इतिहास; https://www.jivniitihashindi,com. Date: 27-10-2021.
25. वही, Date: 27-10-2021.
26. वही, Date: 27-10-2021.
27. श्री कृष्णदास; स्वंतंत्रता संग्राम के 90 वर्ष; इंडियन प्रकाशन, 36, पन्ना लाल रोड, जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद- 211002; प्रथम संस्करण: 1946; पृ. 68.
28. 1971 युद्ध: बांग्लादेश बनने की पूरी कहानी; https://navbharattimes.indiatimes.com/education. Date: 27-10-2021.
29. वही.
30. विस्थापन के कारण- प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक; https://sarkarifocus.com. Date: 19-10-2021.
31. पाण्डेय, अचला; विस्थापन का साहित्यिक विमर्श; लोक भारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी भवन, सिविल लाइन्स, प्रयागराज-211001; प्रथम संस्करण; 2019; पृ. 11.
32. वही, पृ. 12.
33. अर्नेस्ट गेलनर द्वारा पांचवें समाजशास्त्रीय सम्मलेन 1962, वाशिंगटन में प्रस्तुत शोध पत्र 'कांसेप्ट ऑफ़ सोसाइटी'.
34. https://www.drishtiias.com, Date: 18-10-2021.

द्वितीय अध्याय
अलका सरावगी का जीवन और सृजन

अलका सरावगी : जीवन और व्यक्तित्व

अलका सरावगी का व्यक्तित्व अपने काल की सशक्त मिशाल है। साठोत्तरी महिला लेखिकाओं में इनका नाम उल्लेखनीय है। साहित्यकार जिस वातावरण में रहता है, जो संघर्ष वह अपने जीवन में करता है तथा उन संघर्षों से जो अनुभव प्राप्त करता है उसी की अभिव्यक्ति वह सर्जनशील कल्पना के द्वारा प्रस्तुत करता है। परिणामतः किसी भी साहित्यकार की साहित्यिक कृतियों को समझने के लिए व्यक्ति परिचय महत्वपूर्ण होता है।

अलका सरावगी का जन्म 17 नवम्बर, 1960 में कोलकाता, पश्चिम बंगाल में हुआ। उनके पिता का नाम केशवप्रसाद केजरीवाल है जो अनुशासनप्रिय और बच्चों की शिक्षा के प्रति सचेत थे। इनकी माताजी कुशल, सामान्य और धार्मिक प्रवित्ति की गृहणी थी। अलका सरावगी अपनी माँ को ताई कहती हैं। इनके पिता केशवप्रसाद एक सफल और कुशल व्यवसायी होने के साथ-साथ परोपकारी और गंभीर प्रवृत्ति के व्यक्ति थे।

अलका सरावगी बचपन से ही प्रतिभा संपन्न और कुशाग्र बुद्धि की थी। उनकी प्रारंभिक शिक्षा कोलकाता शहर में पूरी हुई है तथा विधिवत शिक्षा बारहवीं कक्षा तक हुई। इसके उपरांत इन्होंने बी. ए. तक शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने विवाह के पूर्व ही स्नातक की उपाधि प्राप्त कर ली थी। अलका सरावगी का विवाह 20 वर्ष की आयु में सन 1980 ई. में महेश सरावगी के साथ संपन्न हुआ। जिसके कारण उनकी शिक्षा में कुछ समय के लिए व्यवधान आया, परन्तु उनके पिता के सूझबूझ और पति के सहयोग से वे पुनः अध्ययनरत हुई। सन 1988 ई. में दो बच्चों की माँ होते हुए भी इन्होंने स्नातकोत्तर की उपाधि ग्रहण की।

सरावगी जी का स्नातक का विषय हिंदी साहित्य न होने के कारण उन्हें कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा, फिर भी उन्होंने स्नातकोत्तर उपाधि प्रथम श्रेणी में हासिल की।

अलका सरावगी जी के पिता मान्यताओं और परम्पराओं में बंधे थे। इस कारण इन्होंने अपनी बेटियों पर कई प्रकार के प्रतिबंध लगा रखे थे। माध्यमिक शिक्षा होने के उपरान्त उनके पिता ने कॉलेज में दाखिला करवाया, ताकि विवाह हेतु अच्छा वर मिल सके। अलका सरावगी स्वयं कहती हैं, -"मेरे व्यवहारिक पिता का ही शुक्र है कि कॉलेज की आइरिश प्रिंसिपल सिस्टर मेव के मुंह से यह चुभता हुआ वाक्य सुनने के लिए मै कॉलेज तक पहुँच ही गयी 'तुम लोग यहाँ पढ़ने थोड़े ही आई हो, शादी की प्रतीक्षा करते हुए शादी के बाजार में अपनी कीमत बढ़ाने आई हो।"[1]

अलका सरावगी एक संवेदनशील, स्पष्टवादी और बुद्धिमति स्त्री हैं। घर परिवार और गृहणी के दायित्व को निभाते हुए कथाकार अलका सरावगी का जीवन मारवाड़ी परिवेश में व्यतीत हुआ। मारवाड़ी परिवेश में तात्कालीन सामाजिक मान्यताओं और परम्पराओं को देखते हुए स्त्रियों पर कई प्रतिबंध लगाये हुए थे। उस समय मारवाड़ी परिवेश में शिक्षा का स्तर निम्न था, इसलिए अलका सरावगी के पिता ने भी लड़कियों की शिक्षा का मापदण्ड ऊँचा करने की अपेक्षा विवाह करना अधिक उचित समझा। अलका सरावगी अपनी शिक्षा और विवाह से संबंधित तथ्य को स्वीकारते हुए कहती हैं -"यह मानदण्ड मेरी माँ की शादी के वक्त यदि छठी-सातवीं कक्षा तक शिक्षित होना था, तो हम बहनों के लिए इसकी छूट बढ़कर उच्चतर माध्यमिक या कॉलेज दाखिला होना हो गया था। यदि मेरी माँ के लिए सिलाई-कढ़ाई, खाना बनाना वगैरह जरूरी योग्यताएं थी तो हमारे बायोडाटा (परिचय पत्र) में तैराकी, गाड़ी चलाना, चित्रकारी, संगीत वगैरह-वगैरह योग्यताएं भी शामिल कर ली गयी थी। पर सारी शिक्षा का उद्देश्य वही का वही था। प्रचलित पैमाने के आधार पर सुयोग्य पत्नी, बहू और माँ बनना यहाँ तक कि योग्यताओं के इजाफे में पूरी सावधानी बरती जाती थी कि वे इतनी अधिक न हो जाएँ कि अनुकूल वर ढूंढने में मुश्किल हो।"[2]

अलका सरावगी का जीवन सादगी की पराकाष्ठा है। लेखन की प्रेरणा इनकी अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से समाज का विश्लेषण करती हैं। इन्होंने अपनी शिक्षा संबंधी कठिनाइयों को उजागर करने का कार्य किया है तो दूसरी ओर वे शब्दों के आवरण में ढककर कहती हैं - "आज महिलाओं को लेखन के क्षेत्र में दोहरी-तिहरी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जहाँ उनके लेखन को भी दोयम दर्जे का समझा जाता है। मीरा से लेकर महादेवी वर्मा तक के ऐतिहासिक काल में जिस तरह लेखिकाओं को अपने स्त्री होने के कारण तरह-तरह के लांछनों, कलंक, प्रताड़नाओं एवं वर्जनाओं का सामना करना पड़ा है, इन दोनों लेखिकाओं की त्रासदी को शोकपूर्ण रागात्मक अभिव्यक्तियों में देखा जा सकता है।"[3]

अलका सरावगी ने पश्चिम बंगाल के कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता से पी.एच. डी. की उपाधि प्राप्त की है। इनके शोध प्रबंध का विषय 'रघुवीर सहाय का काव्य' था। रघुवीर सहाय नई कविता के सशक्त रचनाकार माने जाते हैं। अलका सरावगी ने शोधकार्य करने उपरान्त प्रयोगशील कहानी और उपन्यास पर लेखन कार्य शुरू किया। इन्होंने इटली के वेनिस विश्वविद्यालय में 2002 में हिंदी और बंगाली साहित्य पर आख्यान दिया। इन्होंने अपनी रूचि अनुरूप पत्रकारिता में डिप्लोमा भी किया है।"[4]

अलका सरावगी का साहित्य के प्रति विशिष्ट अनुराग है। वह अपने हृदय में उत्पन्न भावों के कारण साहित्य के अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाती हैं। अलका सरावगी के पिता व्यवसायी जरूर थे परन्तु उनका शेरो शायरी और भाषा के प्रति विशेष अनुराग था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अलका सरावगी को शुद्ध भाषा के संस्कार और भाषा पर कड़ी पकड़ पिता से पैतृक संपत्ति के रूप में मिली है।

अलका सरावगी जी की लेखनी की प्रेरणा के विषय में कृपाशंकर चौबे लिखते हैं -"बालकोष में उन्हें संयोग से काम मिला था, उसी समय एम.ए. का भी विचार आया तथा उस दौरान अशोक केसरिया से परिचय हुआ, जिन्होंने उन्हें लेखन की ओर प्रेरित किया।"[5]

अलका सरावगी को बचपन से ही एक साहित्यिक माहौल मिला जहाँ अपने पिता की रूचि की वजह से साहित्य की ओर झुकाव हुआ। जिस प्रकार यह माना जाता है कि असली गुरु या शिक्षक अच्छी किताबें होती हैं, ठीक उसी प्रकार देश भ्रमण करके भी मनुष्य अच्छा ज्ञान प्राप्त करता है। अलका सरावगी पर यह बात सटीक बैठती है। इन्होंने अपने सामाजिक परिवेश का आत्मसार किया तथा अपनी लेखनी के माध्यम से यथार्थ को उजागर किया। परिणामतः इनका नाम उच्च श्रेणी के कथाकारों में आता है। देश-विदेश के भ्रमण से प्राप्त अनुभव इनके कथा साहित्य का केंद्र बिन्दु हैं। राजेश जोशी के अनुसार-"लेखक मुख्य रूप से दो तरह की यात्राएँ करता है, बाहर की यात्राएँ और भीतर की यात्राएँ। जो लेखक यायावर होते हैं, घुमक्कड़ किस्म के होते हैं, उनकी रचना में दृश्य अधिक होते हैं। जीवन के राग-रंग और चरित्र भी अधिक होते हैं। घुमक्कड़ रचनाकारों के विचार जीवनोमुख अधिक होते हैं, जबकि जो घुमक्कड़ नहीं हैं उनके विचार दार्शनिक प्रवृत्ति के ज्यादा होते हैं। घुमक्कड़ रचनाकार थोड़ा लापरवाह होता है जबकि जो घुमक्कड़ नहीं, वह अधिक सतर्क होता है।"[6]

अलका सरावगी जी लेखन का आरम्भ 29 वर्ष की आयु में करती हैं। सन 1990 ई. में 'आप की हंसी' नामक कहानी से इनकी लेखन की शुरूआत होती है। 'आप की हंसी' नामक कहानी के विषय में मीनाक्षी मुखर्जी द्वारा लिए गए साक्षात्कार में सरावगी जी कहती हैं-"मैं एक सामान्य व्यक्ति जो बहुत हँसता था उससे प्रभावित होकर लेखक बनी, उस समय हम अपने परिवार के साथ जब रहने आये तो उसने बिना किसी सूचना के हमारा समान उठा लिया। वह न ही किसी परिवार का सदस्य था, न ही किसी के घर का नौकर, कोई भी व्यक्ति उस पर ध्यान नहीं देता था, उसे देखकर लोग उसे पागल समझते थे। मैंने हमेशा उस समय को याद करके सामाजिक भेदभाव के बारे में इस व्यक्ति के प्रति बहुत सोच विचार किया और उसी के सम्बन्ध में यह कहानी 'आप की हंसी' लिखी जो बाद में 'वर्तमान साहित्य' पत्रिका में प्रकाशति हुई।"[7]

अलका सरावगी ने देश-विदेश की यात्राएं की हैं। इन यात्राओं के माध्यम से उन्हें अविस्मरणीय अनुभव प्राप्त हुए, जिसका प्रयोग इन्होंने अपने लेखन में बखूबी किया है। ऐसा कहा जा सकता है कि यात्रा से प्राप्त अनुभव लेखन के लिए अद्भुत अस्त्र है। विश्व के नवीनतम साधनों का उपयोग अपने लेखन के लिए करना एक नवीन कला है। "अलका सरावगी जी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति रखने वाली लेखिका है। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में पी.एच.डी. एवं पत्रकारिता में डिप्लोमा के साथ ही विभिन्न भाषाओं का ज्ञान रखती हैं। इनकी कृतियों का अनुवाद अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, इटालियन, स्पेनिश और अन्य भाषाओं में किया गया है। इनका बहुचर्चित उपन्यास 'कलिकथा: वाया बाईपास' को कैम्ब्रिज, टूरिन, नैप्लस, जैसे विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में शामिल किया गया है। अलका सरावगी की विदेशों में उपस्थिति कुछ इस प्रकार दर्ज है-

क. वेनिस विश्विद्यालय, हिंदी और बंगाली साहित्य के मध्य आख्यान, 2002

ख. भारतीय लेखन का प्रतिनिधित्व, belles &Stranges, फ्रांस, 2002.

ग. भारतीय लेखन में सामूहिक यादों पर संगोष्ठी, ट्यूरिन, इटली, 2003.

घ. मोरिशस साहित्य महोत्सव, 2004

ङ. बर्लिन साहित्य महोत्सव, 2004

च. Calendidonna, 2005, उड़ीन, इटली.

छ. फैकफर्ट पुस्तक मेला 2005, 2006

ज. Salondu live, पेरिस, 2007

झ. ट्युरिन पुस्तक मेला, 2007

ञ. Incroci di Civilia, वेनिस, 2010।"[8]

'अलका सरावगी जी मारवाड़ी परिवार से थीं। अलका सरावगी की दो बहनें हैं जो अधिक पढ़ी-लिखी नहीं हैं। अलका सरावगी के स्नातक उपाधि प्राप्त करने के पश्चात उनका विवाह मारवाड़ी परिवार के

बड़े बेटे के साथ संपन्न हुआ। इनका परिवार संयुक्त और बड़ा है। अलका जी की दो संतानें हैं एक बेटा मयंक और बेटी सलोनी है, जो इनकी रचना के पाठक भी हैं। इनका बेटा अक्षम है। इन्हें साहित्य लिखने की प्रेरणा अपने बेटे से मिल है। वर्षों के इलाज और हर प्रकार से बेटे को सक्षम बनाने में इनका संघर्ष जारी है। इसी संघर्ष से उनके भीतर रचनात्मकता का उदभव हुआ। अलका सरावगी का अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य के प्रति गहरा लगाव है।

अलका सरावगी प्रत्येक नारी के लिए प्रेरणा की स्त्रोत हैं। निडरता इनके अस्तित्व की प्रमुख विशेषता है जिसके कारण उन्होंने कभी समाज में व्याप्त अंधविश्वासों से समझौता नहीं किया। वह अपनी अन्य रचनाओं के माध्यम से निरंतर उसका विरोध करती रही। अलका सरावगी साहित्य जगत में अपनी ख्याति फैलाने वाली नारी मुक्ति के युद्ध की योद्धा हैं। उन्होंने नारी स्वातंत्र्त्य, चेतना और आधुनिकता के बोध को एक नई दिशा दी हैं। स्त्री के पारिवारिक जीवन और परंपरागत नैतिक मान्यताओं के बीच इनके अंतर्द्वंद का प्रत्यक्ष आभास आज भी इनकी लेखनी में देखा जा सकता है, जोकि स्त्री की छटपटाहट का सहज और ईमानदार दस्तावेज है। "कहने को आज भी पारिवारिक जीवन में महिलाओं को हर प्रकार के समानधिकार प्राप्त हैं लेकिन आज भी वास्तव में घर-परिवार में एक महिला का स्थान भिन्न है। वह आज भी वास्तव में पुरुष शासन में रह रही है। वैसे पुरुष और स्त्री पर कोई मौलिक असमानता नहीं है। दोनों का मन एक ही है।"[9]

नवें दशक में भारतीय साहित्य में एक महत्वपूर्ण बदलाव विस्थापन की त्रासदी के कारण आया, जिसके कारण विस्थापन ने साहित्य के केंद्र बिंदु से होकर मुख्यधारा में अपनी जगह बनायीं। हिंदी कथा साहित्य इससे सर्वाधिक प्रभावित हुआ। वर्तमान दौर में विस्थापन से जुड़ी संकट व पहचान के संघर्ष को व्यक्त करने वाले अनेक लेखक हैं, इन लेखकों में महिला कथाकार अलका सरावगी का प्रमुख स्थान है। उन्होंने स्वतंत्र रूप से लेखन करते हुए अनेक उपन्यास, कहानी संग्रह लिखे हैं। इनके साहित्य में स्वतंत्रता

संघर्ष, विभाजन की त्रासदी, मानसिक द्वन्द, मानवतावाद, स्त्री मुक्ति चेतना तथा विस्थापन का दंभ आदि का प्रभाव दिखता है । विभाजन के प्रति विद्रोह विस्थापन मुक्ति का पहला कदम था, परंतु देश की राजनीतिक उलटफेर के कारण विस्थापित अपने अस्तित्व की पहचान के लिए बेचैन है और अपनी अस्मिता की पहचान तत्कालीन परिस्थितियों के कारण उजागर नहीं कर सकता। यदि किसी भी विस्थापित व्यक्ति को अपनी स्वयं की पहचान स्थापित करनी है तो उसे समाज, राजनीति एवं परिवार से विद्रोह करना ही होगा।

"अलका सरावगी के नवीन उपन्यास 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' का प्रकाशन 2020 में हुआ था। उपन्यास का नायक कुलभूषण जैन है परन्तु उसके काम ऐसे नहीं हैं कि वह अपने कुल का भूषण बन] सके। वह देखने में अपने भाइयों से अलग और कुरूप है। पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान के विभाजन के दौरान वह बांग्लादेश के कुष्टिया नाम की जगह से कोलकाता आ बसा है। कोलकाता में आकर वह अपने ही परिवार के बीच विस्थापित महसूस करता है। कुलभूषण जैन कोलकाता में अपना नाम बदलकर रहता है और वह अपने परिवार के लिए आवश्यक चीजों का बंदोबस्त करता है। उपन्यास के पूरे एक खंड में कुलभूषण के दोस्त श्यामा धोबी के बारे में बताया गया है जो उसके अनुरूप ही कुरूप है, लेकिन वह दिल का साफ़ है। वह श्यामा धोबी द्वारा दिए गए भूलने के बटन का उपयोग करता है लेकिन फिर भी उसके मन में सदैव कुष्टिया की यादें ताजा है। जिन परिस्थितियों में कुलभूषण को कोलकाता आना पड़ा था, वह बहुत ही पीड़ादायक है। आज भी उसके मन में गंगा से ज्यादा गोराई बसता है। उपन्यास में डॉ. कासिम द्वारा अनिल मुखर्जी की सहायता करने का वर्णन अत्यंत ही मार्मिक रूप में दिखता है। दंगों के भयावह रूप का वर्णन उससे प्रभावित जिन्दगियों का यथार्थ चित्रण है।"[10]

चंद्रकला त्रिपाठी के अनुसार-"विस्थापन की गहरी अंतर्छायायें, इतिहास और देश काल को हाड़-मांस में मिला कर कह देना और ऐसी सघन कथा भूमि, मानव स्वभाव के ट्रेजिक-कोमिक की ऐसी गति,

चरित्रों के नाभिक में प्रवेश की ऐसी क्षमता, बहुत बांधती रही है। यह किताब कथा के भीतर कथाओं को उनके पूरे प्रवाह और जैविक में विन्यस्त कर यह महा आख्यान लम्बी राज चला है। इसे एक साथ देश और मनुष्य दोनों के निर्वासन, विस्थापन की गहरी तकलीफ में उतरना जो था।"[11]

अलका सरावगी का पहला कहानी संग्रह 1996 ई. में प्रकाशित हुआ था। इनके पहले कहानी संग्रह का नाम 'कहानी की तलाश में' है। वर्ष 2000 में दूसरा कहानी संग्रह 'दूसरी कहानी' के नाम से प्रकाशित हुआ। 'दूसरी कहानी' नामक कहानी मानसिक रूप से अस्वस्थ बच्चे की कहानी है, जिसमें यह दर्शाया गया है कि जीवन के प्रति गहरी आस्था, जीवन के प्रति जिजीविषा और अतिशय लगाव, धैर्य, हिम्मत, कर्तव्यनिष्ठा, कर्मठता और सकारात्मक उर्जा स्वस्थ जीवन जीने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

"आज से करीब 20 साल पहले साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित अलका सरावगी हिंदी की प्रमुख कथाकारों में से एक हैं। वह कृष्णा सोबती के बाद दूसरी लेखिका थीं जिन्हें यह पुरस्कार पाने का गौरव हासिल है। अपने पहले उपन्यास 'कलिकथा : वाया बाईपास' से साहित्य की दुनिया में सिक्का ज़माने वाली लेखिका अलका सरावगी किस्सागोई में सिद्धहस्त हैं। वह सहज, सरल एवं प्रांजल भाषा में अपनी बात पाठकों तक पहुँचा देती हैं। इस बीच उनके कई उपन्यास और कहानी संग्रह प्रकाशित हुए। हर बार अलका सरावगी अपनी रचना से नया देती हैं। सौम्य एवं विनम्र व्यक्तित्व की धनी अलका सरावगी की कहानी 'एक पेड़ की मौत' केवल एक वृक्ष की कहानी नहीं है, बल्कि इस कहानी के नायक की भी कहानी है। प्रकृति से मनुष्य का संबंध सदियों से है, लेकिन सभ्यता के विकास के क्रम में यह संबंध छिन्न-भिन्न भी हुआ है। अलका जी ने एक कवि दृष्टि के साथ यह खूबसूरत कहानी लिखी है। वाकई एक पेड़ की मौत दर्दनाक घटना हेतु जिसकी तरफ हम कई बार ध्यान भी नहीं देते। अलका सरावगी ने इस कहानी में मनुष्य की इस संवेदनशीलता को बचाए रखा है। इन्होंने पेड़ के माध्यम से जो एक रूपक बनाया है वह कहानी को एक नई दिशा प्रदान करता है।"[12]

"अलका सरावगी का प्रथम उपन्यास 'कलिकथा: वाया बाइपास' है, जो 1998 में प्रकाशित हुआ। हिंदी साहित्य के जगत में अत्यंत ही चर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास को सन 1998 ई. में 'श्रीकांत वर्मा' पुरस्कार मिला। वर्ष 2001 में 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार तथा 2006 में 'बिहारी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है। 'कलिकथा: वाया बाइपास' उपन्यास से हम इतिहास की अपनी समझ और ऐतिहासिक, सर्जनात्मक दृष्टि बना सकते हैं। उपन्यास का नायक 'किशोर बाबू' और उनके परिवार की चार पीढ़ियों की सुदूर रेगिस्तानी प्रदेश राजस्थान से पूर्वी प्रदेश बंगाल की ओर पलायन और उससे जुड़ी उम्मीद एवं पीड़ा की कहानी बयाँ करती है। यह आजाद भारत में निर्मित सामाजिकता के प्रचलित पैमानों पर जीते मनुष्य की भीतरी पहचान से शुरू होती है। यह उपन्यास अंग्रेजों द्वारा भारत में रेलवे लाने के शुरूआती दिनों से लेकर सन 2000 तक के इतिहास का अवलोकन करती है। इसमें कोलकाता शहर का इतिहास भी देखा जा सकता है। उपन्यास में भारत में हो रही सामाजिक नैतिक मूल्यों के निर्माण और हवस की मार्मिक कहानी का भी वर्णन है। उपन्यास के नायक किशोर बाबू की बाइपास सर्जरी के बाद की स्थिति को बिलकुल ही अलग सिरे से देखने को मिलती है। वे किशोर बाबू जो जीवन भर दक्षिणी कोलकाता के अभिजात समाज का हिस्सा रहे वह मानसिक रोग से पीड़ित हो जाते हैं। कोलकाता शहर की अभद्र सड़कों पर भटकते हुए दिखते हैं और अपनी इसी यात्रा में अपने परिवार के पुरखों से लेकर अपनी तीन वर्षीय नातिन के समय तक को खंगाल देते हैं।"[13]

अलका सरावगी का दूसरा उपन्यास 'शेष कादम्बरी' है, जिसका प्रकाशन 2001 में हुआ। 'शेष कादंबरी' उपन्यास को के. के. बिरला फाउंडेशन के 'बिहारी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। यह उपन्यास नवीन प्रस्तुति के साथ हमारे समक्ष उपस्थित होता है। उपन्यास की नायिका रूबी दी हैं, जिनके जीवन संघर्ष में वैभवपूर्ण अतीत का वर्णन है, जो एकाकी और अंतर्मुखी जीवन के आत्मालाप का सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है। उपन्यास में रूबी गुप्ता का आत्मविश्लेषण ही नहीं, बल्कि सात पीढ़ियों के रईस

की गोद ली गयी बेटी की दास्तान को उजागर करता है। समाज से सताई स्त्रियों की व्यथा को दर्शाती है। प्रस्तुत उपन्यास वृद्धा के अकेलेपन और व्यर्थता बोध से उपजे अस्मिता के संकट को भी उजागर करती है। "अलका सरावगी का उपन्यास 'सोशल वर्क और सोशल जस्टिस' इन दो शब्दों के बीच के स्पेस का मोहक व मार्मिक प्रतिबिम्बन है।"[14]

वृद्ध और युवा जीवन-दृष्टि के फर्क को रेखांकित करने वाला यह उपन्यास जीवंत लेखन का प्रतीक है। जिसमें उन्नीसवीं सदी में जन्मे, रूबी दी के मामा देवी दत्त का व्यक्तित्व रूबी दी के लिए 'आइडेंटिटी क्राइसिस' का कारक बनकर उभरता है। इस 'आइडेंटिटी क्राइसिस' की गिरफ्त में रूबी दी अपनी किशोरावस्था में ही आ चुकी हैं। इस गिरफ्त से उबरने में वह निरंतर प्रयासरत है। रूबी दी 'सोशल वर्क' के आडम्बर से जुड़ी हुई है और अंततः अपने नातिन 'कादम्बरी' में अपनी शेष कथा देखने को बाध्य हुई। शेष कादम्बरी उपन्यास जीवन के ऐसे प्रवाह को उद्घाटित करती है जो जीवन का उदात्त है। इनकी यह औपन्यासिक कृति उपभोक्तावादी मूल्यों के बरक्स उदारवादी मूल्यों की स्थापना भी करती है।"[16] अलका जी का यह उपन्यास एक सदी से दूसरी सदी तक के समय और स्मृतियों के इतिहास के तनाव से नई उत्सुकता जगाता है और साथ ही उपन्यास के परिचित ढाँचे को एक बार फिर तोड़ने की नई चुनौती पैदा करती है।"[15]

"अलका सरावगी का तीसरा उपन्यास 'कोई बात नहीं' है जो 2004 ई. में राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का मुख्य कथ्य शशांक नामक एक अपाहिज बेटे की दर्द भरी दास्तान है। शशांक का शरीर सामान्य बच्चों की तरह नहीं है, जबकि उसका दिमाग पूरी तरह विकसित है। शशांक सत्रह साल का एक लड़का है जो कलकत्ता के नामी मिशनरी स्कूल में पढ़ते वक्त अपनी गैर बराबरी को जीता है। शशांक का एकमात्र दोस्त एंग्लो इंडियन लड़का है जो उसी की भांति एक किस्म का जाति बाहर या आउटकास्ट है। दूसरी तरफ शशांक की दादी की कहानियाँ–दादी के अपने घुटने भरे जीवन की बार-

बार उन्हीं शब्दों और मुहावरों में दोहराई जाती कहानियाँ, जिनका कोई शब्द कभी अपनी जगह नहीं बदलता। लेकिन सबसे विचित्र कहानियाँ उस तक पहुँचती हैं। जतीन दा के मार्फत, जिनसे वह बिना किसी और के जाने, हर शनिवार विक्टोरिया मेमोरियल के मैदान में मिलता है। ये सभी कहानियाँ आतंक और हिंसा के जीवन से जुड़ी कहानियाँ हैं जिनके बारे में हर बार शशांक को संदेह होता है कि वे आत्मकथात्मक हैं, इस पर संदेह के निराकरण का उसके पास कोई रास्ता नहीं है। तभी शशांक के जीवन में एक भयानक घटना घटती है जिसके कारण उसके जीवन के परखच्चे उड़ जाते हैं।"[16]

अलका सरावगी द्वारा लिखित उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' रहस्यमय कथावृत्त को प्रस्तुत करता है। इसका परिप्रेक्ष्य समकालीन बाजारवाद है। वैश्विक पूँजीवाद इसका कारक है। उपन्यास आधुनिक दौर की कथा कहते हुए हमें इंसान के बुनियादी सरोकार के करीब ले जाता है। "अलका सरावगी का यह उपन्यास कॉर्पोरेट इंडिया की तमाम मान्यताओं, विडम्बनाओं और धोखों से गुजरता है। 'अलका सरावगी का यह उपन्यास संकल्पना का उपन्यास है। नव वैश्विक पूँजी और बाजारवाद के खेल में डूबे औद्योगिक प्रतिष्ठानों 'कॉर्पोरेट हाउसिंग' की दुनिया का अत्यंत सूक्ष्म और विस्तार में अंकन आकार अपना सचिन्तित विचार प्रस्तुत करती हैं। भारत में बन रही अमीरी गरीबी की दुनिया के अंतर्बाह्य को उजागर कर पाठक के संवेदन तंत्र और सोच को जगाती है।"[17]

'उपन्यास के केंद्र में एक पात्र है- के.वीन. शंकर अय्यर। उपन्यास में जिसे प्रायः के. वी. नाम से संबोधित किया जाता है। "उम्र के जिस मुकाम पर लोग रिटायर हो जाते हैं, वहीं के. वी. शंकर अय्यर के पास नौकरियाँ चक्कर लगा रही हैं। के. वी. मानते हैं कि इण्डिया के 'इकनोमिक बूम' में देश की एक अरब जनता के पास खुशहाली भरे सपने हैं। पूरी दुनिया का शासन सरकार के हाथ में नहीं, बल्कि कॉर्पोरेट कंपनियों के हाथ में हैं। मल्टीनेशनल कंपनी का एक्जीक्यूटीव गुरुचरण राय है जो के. वी. की बातें बिना बताये बीच-बीच में पहाड़ों पर भी जाता है। अन्ततः वह कंपनी के काम से मध्यप्रदेश के सुदूर प्रान्त में

जाता है और लापता हो जाता है। 'एक ब्रेक के बाद' जिसमें वह आई-गयी खबर हो जाता है। कुछ समय पश्चात के. वी. को उसकी डायरियां मिलती हैं जिसमें लिखी बातों का कोई तुक नजर नहीं आता है।'[18]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अलका सरावगी का उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' कॉर्पोरेट इण्डिया की तमाम मान्यताओं, विडंबनाओं और धोखों से गुजरता है। उपन्यास कथात्मक साहित्य का सर्वोत्कृष्ट माध्यम होता है। यह कथावस्तु के माध्यम से मानव जीवन में उत्पन्न घटनाओं का उद्घाटन करती है जिसके आसपास कई सारे प्रसंग आते हैं। उनकी आपसी संगति होती है | इसलिए जीवन को समझने के लिए उपन्यास विधा सबसे कारगर रचना होती है। उपन्यास विधा में जीवन के यथार्थ चित्र को उपास्थित कर देने का प्रयास किया जाता है। अलका सरावगी का हिंदी उपन्यास जगत में एक महत्वपूर्ण स्थान है। इनका पूरा कथा साहित्य स्वतंत्रता के पश्चात के भारतीय मध्यवर्गीय के वातावरण को समझने का प्रयास है। अलका सरावगी के उपन्यासों की कथावस्तु की संरचना उसकी अंतर्वस्तु पर निर्भर है जो पाठक को सदैव अपनी ओर लगातार खींचे रहती है। अतः अलका सरावगी आधुनिक भाव संरचनाओं और उसके सामाजिक विस्थापन की बड़ी कथाकार हैं।

अलका सरावगी आधुनिक युग की सजग कथाकार हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं को पकड़ने की कोशिश की है | आज के समय में जनसंचार सूचना का एक मजबूत माध्यम है। जनसंचार ने विज्ञापन के माध्यम से अपनी कमाई भी सुनिश्चित कर ली है। विज्ञापनों के अत्यधिक प्रचार-प्रसार से समाज पर बहुत गहरा प्रभाव दिखता है। यह जनता के मन पर गहरी छाप छोड़ता है और उत्पादकों के प्रति आकर्षण का भाव पैदा करते हैं। अलका सरावगी जनसंचार द्वारा प्रसारित विज्ञापनों के आक्रामक प्रभाव को पहचान लेती है। इन्होंने अपने उपन्यास में लिखा है- "बस्तर के गाँव में अपनी झोपड़ी में बैठकर आदिवासी टी. वी. पर वाशिंग मशीन में कपड़े धुलते देख रहा है और डोर फ्रिज में जाने कब से रखी ताजा लौकी और टमाटर की गाथा सुन रहा है। इए देश की एक अरब जनता अब एक साथ सपने देख रही है।"[19] इस प्रकार

एक गरीब व्यक्ति भी विज्ञापनों के प्रभाव में आता है। आज का दौर भूमंडलीकरण है जिसके मध्य जनसंचार देखा जाता है जो ज्ञान धन, हिंसा तीनो पर प्रभाव जमा रहा है। यहाँ कहना ठीक होगा कि "व्यापार तंत्र को भारत जैसा बहुसंख्यक उपभोक्ता वाला देश माल बेचने का सबसे अच्छा बाजार दिखाई देता है इसलिए हमें विश्व बाजारवाद की नई ताकतों, उन योजनाओं और पैटर्नों को समझना जरूरी है।"[20]

इस प्रकार अलका सरावगी अपनी रचनाओं में आज की मीडिया के बहुआयामी पहलुओं को उजागर करती हैं। मीडिया की सशक्तता प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य मीडिया के प्रभाव से चारों तरफ से जकड़ा हुआ है। अतः मीडिया के बीच लोग फंसे हुए हैं। मीडिया के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलुओं को देखा जाता है । लेकिन कथाकार ने समाज के प्रति जबाबदेही भूमिका निभाते हुए सकारात्मक पहलुओं को उजागर किया है और साथ ही विशेष रूप से नकारात्मक पहलुओं को भी चित्रित किया है।

आज का आधुनिक युग समानता का युग है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार जीवन के हर क्षेत्र में उन्नति के अवसर प्राप्त कर रहा है। अपने सर्वांगीण विकास के लिए आज हर किसी को समान अधिकार प्राप्त है। हिंदी साहित्य के जगत में नारी विमर्श एक ज्वलंत विषय है। स्त्री को केंद्र बनाकर कई विधाएं प्रकाश में आ चुकी हैं। आज के समय की लेखिका अलका सरावगी एक ऐसी कथा लेखिका है, जिनकी रचनाओं में मानवीय संवेदनाओं का भंडार है। इनके साहित्य का प्राण स्त्री को माना जाता है परंतु स्त्री विमर्श को लेकर उन्होंने नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है जो स्त्री विमर्श की परंपरा से हटकर है। अलका सरावगी अपने विचारों से स्वतंत्र लेखिका है। इन्होंने अपनी रचनाओं में एक ओर कई नारी पात्रों द्वारा नारी शोषण का वर्णन किया है तो दूसरी ओर आज की सशक्त हो रही नारी का भी चित्र प्रस्तुत किया है। इनके उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद', 'कोई बात नहीं', 'कलिकथा वाया बाईपास' आदि उपन्यासों में नारी के दुर्गा

काली के रूप का वर्णन किया गया है। लेखिका स्त्री के अनेक पक्षों पर प्रकाश डालती है। वह कभी संघर्षरत हैं तो कभी अपने जीवन के मायने तलाश करती हैं।

अलका सरावगी : सृजन

अलका सरावगी साहित्य की दुनिया में अपने लेखन के प्रति ईमानदार रही हैं। वे अपने आस-पास के वातावरण और संवेदनाओं से प्रेरित होती हैं और अपनी कलम से सशक्त रचना का निर्माण करती हैं। अपनी रचना को गति, रंग, रूप, आकार आदि प्रदान करती हैं। अलका सरावगी सफल उपन्यासकार के साथ-साथ कहानीकार के रूप में भी जानी जाती है, जिसके माध्यम से एक साहित्यकार की प्रतिभा की परख होती है। अलका सरावगी के व्यक्तित्व के अनुरूप ही इनका रचना संसार है। इनके जीवन के कुछ न कुछ अंश इनके साहित्य में अवश्य मिलते हैं। अलका सरावगी द्वारा रचित सभी कृतियाँ चर्चित है जो इस प्रकार हैं- अलका सरावगी के कुछ प्रमुख उपन्यास 'कलिकथा : वाया बाइपास', शेष कादम्बरी, 'कोई बात नहीं', 'एक ब्रेक के बाद', जानकीदास तेजपाल मैन्सन' और 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' हैं।

अलका सरावगी उपन्यास लेखन क्षेत्र में अन्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त लेखिका हैं। अलका सरावगी के कथा साहित्य का इटालियन, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच और समस्त भारतीय भाषाओँ में अनुवाद हुआ है। इनके बहुचर्चित उपन्यास 'कलिकथा: वाया बाइपास' को कैम्ब्रिज, टुरिन, नैप्लास आदि विदेशी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है। स्वयं अलका जी द्वारा उसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया गया है। 'शेष कादंबरी' उपन्यास का बांग्ला भाषा में अनुवाद मीनाक्षी मुखर्जी द्वारा किया गया और इटालियन भाषा में अनुवाद अंग्रेजी में "ओवर टू यू कादंबरी' नाम से हुआ है। इनकी कुछ प्रमुख कहानियों में 'कहानी की तलाश में', 'दूसरी कहानी' है और बाल साहित्य के अंतर्गत 'कभी शैतानी न करने वाला लड़का' है।

अलका सरावगी को बेहतर लेखन एवं सृजन के लिए अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानों से सम्मानित किया गया है। उनके द्वारा प्राप्त सम्मान एवं पुरस्कार निम्नलिखित हैं-

सन 1998 में 'कलिकथा वाया बाईपास' उपन्यास के लिए 'श्रीकांत वर्मा' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। सन 2001 में 'कलिकथा: वाया बाइपास' उपन्यास के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया। सन 2006 में 'शेष कादंबरी' उपन्यास के लिए बिहारी पुरस्कार' से पुरस्कृत किया गया। 2021 में उपन्यास 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' के लिए कलिंग साहित्य महोत्सव द्वारा सर्वश्रेष्ठ हिंदी किताब का 'बुक ऑफ़ द ईयर' अवार्ड से सम्मानित किये जाने की घोषणा हुई है।

संक्षेप में, अलका सरावगी अपनी विविध रचनाओं से कई पहलुओं को परिलक्षित करती हैं। इन्होंने अपने साहित्य को अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया है। इनके साहित्य को पढ़ने से व्यक्ति समाज को देखने का नजरिया परिवर्तित होता है। वह अपने साहित्य में संवेदनशील और समाजपयोगी चित्रण बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत करती हैं। अलका सरावगी स्त्री की विभिन्न परतों को खोलकर, उसके मन में उत्पन्न जिजीविषा को खुलेपन से चित्रित करती हैं। मानव जीवन की विवशता व अकेलापन आदि इनकी कहानियों तथा उपन्यासों में देखने को मिलता है। हम कह सकते हैं कि समकालीन साहित्य के विकास में इनका प्रमुख योगदान है क्योंकि इनके साहित्य में भोगे हुए यथार्थ जीवन की जटिलता और त्रासदी का प्रासंगिक चित्रण देखने को मिलता है। अलका सरावगी की रचनाओं में अभिव्यक्त ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिदृश्य का वर्णन होता है। यह हिंदी साहित्य के क्षेत्र में उपन्यासकार के रूप में अधिक जानी जाती हैं। इनका उपन्यास मूलतः कोलकाता जीवन पर आधारित है। अपने विशिष्ट मारवाड़ी तेवर के कारण इनकी रचनाओं में विशेष प्रकार का विलक्षण, खुलापन और बेबाक सहजता समाहित है। अलका सरावगी किसी विशेष विचारधारा से प्रेरित न होकर वैयक्तिक और सामजिक अनुभवों से प्राप्त जीवन दृष्टि के आधार पर लिखती हैं। उनकी कलात्मक उर्जा को किसी भी रूप में नकारा नहीं जा सकता। वे परिवार की सीमाओं में न रहकर अपने रचना संसार में राजनीतिक विसंगतियों को भी चित्रित करती हैं। कुल मिलाकर कहा जाये तो अलका सरावगी की रचनाएं इस अर्थ में महत्वपूर्ण हैं कि इनमें संबंधों के रहस्यमय और शुद्ध

मानसिक आधार के बदले एक ठोस और वास्तविक परिस्थतियों के भीतर संघर्ष करती हैं और टूटती हुई इकाइयों का मार्मिक स्वरूप खड़ा करती हैं। जिसके कारण उनकी रचनाएं सामान्य पाठक तक अपनी पहुँच बनाने में सफल हैं।

संदर्भ

1. https://www.scotbuzz.org. Date: 25-10-2021
2. वही.
3. प्रेरणा; पत्रिका; अरुण तिवारी; देशबंधु भवन; 26 बी; भोपाल-462042; जुलाई दिसम्बर, 2010; पृ. 9.
4. https://www.shabdankan.com. Date: 25-10-2021.
5. https://www.scotbuzz.org. Date: 25-10-2021.
6. जोशी, राजेश; एक कवि की नोटबुक; राजकमल प्रकाशन, 1-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरयागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण:2014; पृ. 133.
7. वही, पृ. 134.
8. https://www.shabdankan.com. Date: 25-10-2021.
9. सिंघवी, कमला; नारी: भीतर और बाहर; नेशनल पब्लिशिंग हाउस प्रकाशन, अंसारी रोड दरिया गंज; नई दिल्ली-110001, संस्करण: 1972; पृ. 20.
10. वही, पृ. 35.
11. सरावगी, अलका; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2020; पृ. 1, (प्रतिक्रियाएँ)
12. https://janjwar.com/past/alka-sarawgi-hindi-story. Date: 25-10-2021.
13. चव्हाण, डॉ. अर्जुन; समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; प्रथम संस्करण-2008; पृ. 146.
14. सरावगी, अलका; भारतीय साहित्य संग्रह (भारतीय साहित्य का अद्वितीय संकलन), नारी विमर्श, शेष कादंबरी; https://www.pustak.org/index.php/books/book details/ Date: 24-10-2021.
15. सरावगी, अलका; https://www.bhartiyasahityas.com/product/shesh-kadambari- Date: 23-10-2021.
16. सरावगी, अलका; शेष कादंबरी; राजकमल प्रकाशन, 1-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरयागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण 2004; कवर पेज.
17. सरावगी, अलका; कोई बात नहीं; राजकमल प्रकाशन, 1-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरयागंज, नई दिल्ली- 110002; संकरण: 2015; उपन्यास के बुक फ्लैप से.

18. सिंह, पुष्पपाल; 21 वीं शती का हिंदी उपन्यास; राधाकृष्ण प्रकाशन, 1-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरयागंज, नई दिल्ली-110002; संकरण: 2015; पृ. 272.
19. अग्रवाल, रोहिणी; हिंदी कहानी वक्त की शिनाख्त और सृजन का राग; वाणी प्रकाशन, अशोक राजपथ, पटना विस्वविद्यालय के पास, पटना: 800004; प्रथम संकरण: 2015; पृ. 80.
20. शर्मा, मैना; अलका सरावगी के उपन्यास तराई में जनसंचार विमर्श; https://www.apnimaati.com; Date: 23-10-2021.

तृतीय अध्याय
'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में विस्थापन

इक्कीसवीं सदी में आकर उपन्यास के कथ्य विस्तृत रूप से अचंभित करते हैं। जीवन जगत का कोई भी क्षेत्र नहीं छूटा, जहां उपन्यास रचना न हुई हो। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि समाज के विभिन्न क्षेत्रों से ऐसे रचनाकार आ रहे हैं जिनके अपार अनुभव हैं। जो उपन्यास के माध्यम से कई समस्याओं को उद्घाटित करती है। इन समस्याओं को हम कई रूप से देखते हैं- जैसे, भूमि अधिग्रहण और कृषक दुर्व्यवस्था, साम्प्रदायिकता का प्रतिरोध, विभाजन की त्रासदी आदि का यथार्थपरक चित्रण देखने को मिलता है।

विश्व इतिहास में दो राष्ट्रों का उदय बहुत बड़ी त्रासदी को जन्म देता है जिनमें इतना बड़ा नरसंहार हुआ और बड़ी जनसंख्या को अपने वतन से उजड़ कर दूसरे देश में पलायन करना पड़ा। नए देश में आकर शरणार्थियों को अनेक तरह की विपदाओं का सामना करना पड़ता है। विभाजन की त्रासदी का मूल कारण धार्मिक आधार था जो कि आस्था, विश्वास, रीति-रिवाजों व परम्पराओं में बंधा हुआ था। फलतः बहुसंख्यक धर्म के आधार पर भारतीय उपमहाद्वीप में पाकिस्तान, बांग्लादेश और भारत देशों का निर्माण हुआ। जिस धर्म का जिस क्षेत्र में बाहुल्य था वहां से दूसरे धर्म को उखाड़ फेंका गया। उन्हीं उखड़े हुए विस्थापित लोगों की पीड़ा से अवगत कराया गया। त्रासदी एक भयानक दृश्य के रूप में जीव सत्ता की असत्यता का उद्घोष करती है और जीवन संघर्ष की सार्थकता पर प्रकाश डालती है। त्रासदी ने अपनी विषय वस्तु हेतु हमेशा धार्मिक व पौराणिक आख्यानों को आधार बनाया है, जिसके फलस्वरूप त्रासदी की कथावस्तु विष की भांति एक पृथक सत्ता का निर्धारण करती है। समस्याओं को यदि भौतिक धरातल

पर उतारा जाये तो त्रासदी वाद-विवाद-प्रतिवाद की शैली को जन्म देती है। इस प्रकार त्रासदी के वर्तमान स्वर का संबंध समाज के यथार्थवाद से है।

विभाजन बनाम विस्थापन और हिंदी उपन्यास

हिन्दू-मुस्लिम विभाजन ने आपसी द्वेष व घृणा पैदा की तथा भयंकर दंगों की आग में लोग झोंक दिए गए, जिसका एकमात्र कारण 'विभाजन की राजनीति' थी। इस संत्रास को उन्हीं परिवारों को झेलना पड़ा जो हिन्दुस्तान से पाकिस्तान और पाकिस्तान से हिन्दुस्तान जाने के लिए शरणार्थी बनकर दर-दर मारे फिर रहे थे। विभाजन के कारण विस्थापन होता है। विस्थापन भी हमें कई कारणों से देखने को मिलता है। विस्थापन में व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों तरह की समस्याएँ हमें देखने को मिलती हैं। इस बंटवारे की दुर्दशा का वर्णन कई हिंदी उपन्यासों में मिलता है –'झूठा सच' (यशपाल) 'आधा गाँव' (राही मासूम रजा) 'तमस' (भीष्म साहनी). 'जुलूस' (फणीश्वरनाथ रेणु) तथा अलका सरावगी के उपन्यास 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' आदि। इन उपन्यासों के माध्यम से विस्थापित शरणार्थियों की समस्याएँ जानी जा सकती हैं। कोई नहीं जानता था कि इस प्रलय में वह कहां जायेंगे ? स्त्रियों के साथ बलात्कार, भूख और बीमारी से तड़पकर मरते हुए बच्चे, स्टेशन के सामने खेत में लाईन से बच्चों की समाधि, प्रणय एवं संबंधों के विछोह के विछोभ की जहरीली हवा, तमाम हत्यायें और असंख्य लोगों का भूख प्यास से तड़पना, शरणार्थी शिविरों का काला सच, भय और आतंक का साया, पुलिस और प्रशासन द्वारा प्रताड़ना, संदेहास्पद जीवन और दोयम दर्जे की नागरिकता होने का संत्रास, शरणार्थियों के आवास, भोजन और पुनर्वास संबंधी संकट का सामना आदि का यथार्थ जीवंत विभीषिका विषयक कथा उपन्यासों में भरी पड़ी हैं।

'जुलूस' (1965) में प्रकाशित उपन्यास में फणीश्वरनाथ रेणु जी ने शरणार्थी समस्याओं की जिन दिशाओं का उद्घाटन किया गया है, वह अत्यंत मार्मिक है। उपन्यास में पूर्वी पाकिस्तान, अर्थात बांग्लादेश से पलायन होकर शरणार्थी बिहार के पूर्णियां जिले के गोदियर नामक स्थान पर आये। उपन्यास की नायिका

'पवित्रा' जो बांग्लादेश में रहती थी, पश्चिमी पाकिस्तान के अत्याचार और घुटनभरी जिंदगी से परेशान होकर देश छोड़ भारत की ओर विस्थापित होती हैं व कई प्रकार की समस्याओं का सामना करती है।'[18]

'झूठा सच' उपन्यास में भारत–पाकिस्तान विभाजन पर आधारित विस्थापन की त्रासदी को उभारने का प्रयास किया गया है। यशपाल जी का यह उपन्यास दो भागों में प्रकाशित 'वतन और देश' तथा देश का भविष्य के रूप में 1200 पृष्ठों का विस्थापन त्रासदी का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में विस्थापन की पीड़ा झेलने वाला प्रमुख परिवार रामभुलाया का जो लाहौर की भोलापांधे की सघन गली में रहता था। रामभुलाया के पुत्र जयदेव और पुत्री तारा प्रमुख केंद्र के रूप में रूढ़िवादिता, परंपरा और रीतियों से बंधे होकर भी जीवन की नई प्रगतिशील चेतना को पहचानने व प्राप्त करने के लिये उभरते हैं। देश में स्वतंत्रता के साथ विभाजन की घोषणा सांप्रदायिक दंगे, हिंसा और रक्तपात के भयानक झंझावत के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर पलायन करने की प्रक्रिया में अक्रांत हो उठता है। इस उपन्यास में हिन्दू-मुस्लिम के सांप्रदायिक सघर्ष में बेबस औरतें मौत के घाट उतरती हैं। रामचन्द्र तिवारी के अनुसार- "उपन्यास के माध्यम से यशपाल जी विस्थापित होने वाले लोगों का अल्पसंख्यक जातियों के प्रति बहुसंख्यक जातियों के अमानुषिक अत्याचार और मानवीय बर्बरता के नग्न दृश्य, असहाय नारी के नारीत्व की दुर्दशा, शरणार्थियों के दुःख दर्द भरे काफिले, राजनैतिक स्वार्थों को धर्मान्धता के बहाने सिद्ध करने में आम आदमी का खून बहना तथा मानवता की बलि देना, विस्थापितों की जिजीविषा और संघर्ष आदि रूपों का करुणतम जीवंत कहानी का चित्र प्रस्तुत किया है।'[19]

"भीष्म साहनी द्वारा विभाजन पर लिखा गया महत्वपूर्ण उपन्यास 'तमस' है जो एक निश्चित देश, काल पर आधारित है। इस उपन्यास में उपन्यासकार कल्पना की नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास की सच्ची घटना भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के अंतिम दौर में देश विभाजन के पूर्व और पश्चात् भीषण सांप्रदायिक दंगों का उल्लेख मिलता है। उपन्यास में लेखक द्वारा लाखों लोगों का बेघर होना और अपने पुरखों की

धरती को छोड़ने का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। उपन्यास में नत्थू द्वारा सूअर को मारकर मस्जिद के आगे फेंक देने से शहर में दंगे की स्थिति उत्पन्न हो गयी। एक तरफ 'वन्दे मातरम' की जय-जयकार का नारा लगाया जाता है तो दूसरी ओर पाकिस्तान व 'कायदे आजम जिंदाबाद' के नारे लगाते हुए मस्जिद की ओर बढ़ते हैं तो मस्जिद के आगे मरा हुआ सूअर पाकर बदले में मंदिर के पास गाय का वध कर दिया जाता है। इस घटना के कारण कांग्रेसियों द्वारा कर्फ्यू लगाने की मांग को डिप्टी कमिश्नर द्वारा टाल दिया जाता है जिसके कारण सारा शहर साम्प्रदायिकता की लपटों में जल उठता है। साम्प्रदायिकता से उत्पन्न दंगों की विभीषिका के मार्मिक और यथार्थ अंकन को देखते हुए कृष्णा सोबती ने लिखा है- "तमस जिंदगी की छोटी-बड़ी लड़ाइयों की कहानी नहीं है, यह विभाजन जैसे एतिहासिक घटना का, संघर्ष का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है जिसमें एक साथ लाखों की कगार में अपने ठिकानों से उखड़े हैं। भीष्म स्वयं भी उस तूफान की चपेट में थे, जिसे बंटवारे का नाम दिया जाता है।"[20]

उपन्यास में कई पात्रों की संपत्ति लूट ली जाती है और वे शरणार्थी कैम्पों में अपने परिजनों का पता करते फिरते हैं। दंगो के पश्चात हजारों की संख्या में लोग अपने-अपने गाँव छोड़कर रावलपिंडी की ओर आते हैं। 'विभाजन के नाम पर जो कत्लेआम हुआ वह व्यक्तियों की असहाय स्थिति को उद्घाटित कर रही थी और विभाजन की त्रासदी को उजागर कर रही थी। विभाजन की इसी त्रासदी को लेकर 'बदी उज्जमा का उपन्यास 'छाको की वापसी' एक मार्मिक लघु उपन्यास है। इस उपन्यास में भारत-विभाजन से लेकर बांग्लादेश के निर्माण तक के युग का प्रभावी चित्र उदघाटित हैं। भारत विभाजन से पूर्व हिन्दू-मुस्लिम सद्प्रभाव का भाव था। बिहार के गया नामक नगर में उपन्यास का नायक सैय्यद परिवार के खाजे बाबू मुसलामानों के एक मोहल्ले में रहते थे। उस मोहल्ले में दो-चार सैय्यद परिवार को छोड़कर बाकी जुलाहे, कसाई या दर्जी के मकान थे। खाजे बाबू के क्लर्क पिता को खंडन के प्रति बड़प्पन का गर्व था। खाजे बाबू के डाकखाने के अफसर चाचा का पुत्र हबीब ग्रैजूएट था और हबीब की विचारधारा मुस्लिमलीग प्रवृत्ति

की थी। खाजे बाबू के घर के पास ही उनके बचपन का मित्र 'छाको' अपने खानदानी कार्य दर्जी का कार्यभार सम्भालते हुए काम की तलाश में घूमता रहता था। एक दिन नगर में दंगा भड़क गया। लोग बेतहाशा होकर दुकानें धड़ा-धड़ बंद करके भागने लगे थे। छाकों के पिता भी दूकान बंद करके थोड़ी दूर भागे ही थे कि किसी ने पीछे से लाठी से सिर पर ऐसा वार किया कि उन्हें अस्पताल में ही होश आया। दंगों से पूर्व उन्हें बहुत लोगों ने समझाया था कि दूकान हिंदू बहुल इलाके से हटा लें, परंतु वो नहीं माने। इस दंगे में खाजो जी के पिता कहीं फँस गए जिससे परिवार वाले आतंकित हो गए। खाजो के चाचा उन्हें ढूँढने निकले थे। अब्बा की तलाश में उन्होंने घर का कोना-कोना छान मारा था। थाना अस्पताल, बाज़ार-कोई भी जगह उन्होंने नहीं छोड़ी। बहुत से हिंदू-मुसलमान घायल हुए थे और कई मारे भी गए थे। चाचा ने सब लाशें भी देख ली थी। चारों तरफ खौफनाक सन्नाटा था परंतु कुछ समय बाद अब्बा धोती कुरता पहने घर आए। पाकिस्तान का निर्माण इन दंगों का परिणाम ही था, जिसके कारण छोटे अब्बा और हबीब पाकिस्तान जाने के पक्ष में थे, परंतु परिवार के अन्य सदस्य अपनी ज़मीन से कुछ इस तरह का लगाव महसूस करते थे कि दुनिया भर की मुसीबतें झेल सकता है लेकिन अपनी ज़मीन से ख़ुद को अलग नहीं कर सकता। पाकिस्तान जाने के बाद हबीब के खेत आधे हैं व उसके माध्यम से बताते हैं कि पाकिस्तान में उन्हें विस्थापित शरणार्थी माना जाता है। यहाँ पर अक्सर बिहारी व बंगाली मुसलमानों में भेद के कारण दंगे हो जाते हैं।'[21]

पश्चिमी पाकिस्तान द्वारा पूर्वी पाकिस्तान के बंगाली मुसलमानों को अचानक ज़हरीले साँपों की तरह डंसना शुरू किया और यहीं त्रासदी 'छाको' की रही है जो कलकत्ता में नए सूटों की कटिंग सीखता है परंतु छलावे से उसके मास्टर उसे पाकिस्तान ले जाकर धोखे से हस्ताक्षर करा कर पाकिस्तान का नागरिक बना देता है। परंतु छाको मुसलमान होते हुए भी पाकिस्तान को प्रदेश कहता है क्योंकि उसका लगाव सदैव से उसी मोहल्ले से है जहाँ वह रहता था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'छाको' की स्थिति उस पौधे के

जैसी है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर रोप दिया जाता है। वह अपने सम्प्रदाय के समाज में रहकर भी विस्थापितों जैसा जीवन-यापन करता है।

विभाजन के कारण उत्पन्न शरणार्थी विभीषिका को रचनात्मक मोड़ दिया जाने का प्रयास किया गया है। जबकि यह सत्य था कि अनेक प्रकार की प्रताड़ना को झेलकर विभाजित वतन के लोग नये देश में पनाह पाने के लिए दर-दर भटक कर कई तरह की कठिनाइयों का सामना कर रहे थे। कटी पतंग की भाँति ही इन विस्थापित लोगों को बुरी निगाह से देखा जाता था। शरणार्थी मुट्ठी भर अन्न के लिए तथा सर छुपाने के लिए छनी-छप्पर को भी तरस रहे थे।

बँटवारे की विभीषिका के कारण बहुत से लोगों के लिए 'आज़ादी' भी अभिशाप बन कर रह गयी थी। दंगा, हत्या, बलात्कार, अत्याचार, खून खराब और बेइज्जती के आधार पर देश को बांटकर रक्तपात का इतिहास रचा गया तथा भारत और पाकिस्तान देश के लिए अविस्मरणीय त्रासदी दे कर चला गया, जिसकी दर्द भरी दास्ताँ से हिंदी के कई उपन्यास आज भी अपने पृष्ठों में दर्द से कराह रहे हैं। विस्थापन की त्रासदी के परिप्रेक्ष्य में सांस्कृतिक सामाजिक समस्या को व्यावहारिक स्तर पर भी देखा जा सकता है, जो व्यक्ति के विचारों में दर्शनीय है। मनुष्य के मन व विचारों की उथल -पुथल को त्रासदी के परिप्रेक्ष्य में मनोवैज्ञानिक समस्याओं को भी विस्थापन के कारण झेलना पड़ा था।

'महीप सिंह का उपन्यास 'अभी शेष है' में एक अलग ही प्रकार के विभाजन की त्रासदी को उभारा है। मान सिंह उर्फ़ 'भैया जी' 75 साल के होने वाले हैं किंतु उन्हें बार-बार उन काले दिनों की याद आती रहती है जब देश में विभाजन के समय मारकाट मची हुई थी। उस समय भैया जी भरपूर जवान थे। देश के अनेक भागों में हिंदुओं-मुसलमानों के बीच भड़के दंगों के समाचार रेडियो पर सुनते थे। उन्हें सरहदी सूबे में कुछ स्थानों पर पठान कबायलियों ने कोलकाता के हिंदुओं पर हमले किए थे जिनमें सैकड़ों मारे गए थे किंतु उनके बड़े भाई सदैव ढाढस देते थे कि धीरे-धीरे समय के साथ सब ठीक हो जाएगा और जब राज

पलटता है तो ऐसा ही होता है। पाकिस्तान से आए न जाने कितने ही परिवारों की यही व्यथा है कि वह उन स्मृतियों के बोझ को धोते चले आए हैं। वह नई पीढ़ी से अपने यादों को बांटना चाहते हैं किंतु नई पीढ़ी का अपना जीवन और अपना आकार है, उनके पास इन सब को सुनने का धैर्य कहां है। उपन्यास में भैया जी स्मृतियों से मुक्त नहीं हो पाते हैं। अपनी जन्मभूमि में बिताए स्वर्णिम अतीत का मोह है तो कभी छूट जाने की टीस है।'[22]

पूर्वी पाकिस्तान अविभाज्य भारत का पूर्वी बंगाल था जो मुस्लिम बहुल क्षेत्र था। बांग्लादेश भी एक प्रकार के सांप्रदायिक दंगों के कारण ही संभव हुआ। पूर्वी पाकिस्तान अखंड भारत का पूर्वी बंगाल भी मुस्लिम बहुल क्षेत्र था, किंतु अपनी धार्मिक कट्टरता में पाकिस्तानी सरकार वहां की बंग भाषा और बंग संस्कृति को पूरी तरह समाप्त कर उर्दू और इस्लामी संस्कृति को उन पर थोप रही थी। जनरल अयूब खान के सरकार में आते ही 1958 ई. पूर्वी बंगाल का इस्लामीकरण और तीव्र गति से होता चला गया। फिर उसके बाद याहिया खान की सरकार आई। उनके समय में बंग भाषियों पर अत्याचारों का कहर और भी बुरी तरह बरपाया गया। धीरे-धीरे वहां जनाक्रोश बढ़ता गया, उसी की चरम सीमा बांग्लादेश की निर्मित्ति के रूप में हुई।

बांग्लादेश की मुक्ति वाहिनी सेना की संघर्ष की कहानी या पूर्वी बंगाल में पाकिस्तानी सरकार और फौज द्वारा किए गए अत्याचारों पर हिंदी उपन्यासों में बहुत अधिक नहीं लिखा गया –एकाध उपन्यास में बांग्लादेश के शरणार्थियों की पश्चिमी बंगाल में बेरोक-टोक आवाजाही और वहां जीविका चलाने आदि का वर्णन मिलता है।

"महुआ माजी अपने 'मैं बोरिशाइल्ला' उपन्यास में बांग्लादेश की निर्मिति के पूरे इतिहास और मानव भूगोल में गृह प्रवेश करती है। गहन शोध और विभिन्न व्यक्तियों से साक्षात्कार कर उन्होंने उपन्यास की आधार सामग्री जुटा कर उसे बहुत प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की है। कथा के केंद्र में पूर्वी बंगाल का

बोल साल शहर है जहां के निवासी को आंचलिक भाषा में बोल ही साहिला कहा जाता है। यह उपन्यास बांग्लादेश की मुक्तिगाथा पर केन्द्रित है। महुआ माझी उपन्यास के प्राक्कथन में कहती हैं –जिस तरह बिहार के लोग बिहारी तथा भारत के लोग भारतीय कहे जाते हैं, उसी प्रकार बोरिशाल के लोगों को बोरिशाइल्ला कहा जाता है। उपन्यास का मूल पात्र केंटो है जो बोरिशाल में रहता है इसलिए वह कहता है कि मै बोरिशाइल्ला। कथा नायक बताता है कि किस प्रकार पाकिस्तान बनने के सात महीने बाद से ही पूर्वी बंगाल में 1948 ई. के मार्च महीने में जिन्ना साहब के ढाका विश्वविद्यालय में आने पर छात्रों और बुद्धिजीवियों ने स्पष्ट कर दिया था कि हमें अपनी भाषा, अपने साहित्य, संस्कृति पर अत्यंत गर्व है। इस विषय पर किसी प्रकार का आक्रमण नहीं सहेंगे। पूर्वी बंगाल के प्रत्येक निवासी हिंदू मुस्लिम में कूट-कूट कर भरी राष्ट्रीय चेतना से बांग्लादेश अस्तित्व में आया। उपन्यास का पुरवा कहे कि आधे से अधिक भाग की समस्या पर केंद्रित है कि किस प्रकार 1947 में वहां हिंदुओं के साथ अत्याचार किया गया, किस प्रकार वहां से हिंदुओं को खदेड़ा गया। 5 से 10 दिनों तक चली इस लूटपाट में मारे गए लोग अपना घर बार छोड़कर भारत चले गए। उन्हें शिविरों में रखा गया। फिर भारत सरकार ने उन्हें अलग-अलग भागों में ले जाकर बसाया। इसी प्रकार भारत के उड़ीसा, अंडमान निकोबार, दंडकारण्य रांची, पश्चिमी बंगाल के हावड़ा, ताहिर पुर, कृष्ण नगर आदि जगहों में काफी संख्या में पूर्वी पाकिस्तान के हिंदू शरणार्थी जाकर बस गए।

'उपन्यासकार पाकिस्तान और भारत के प्रमुख राजनीतिक घटनाक्रमों पर दृष्टि डालती हुई आगे बढ़ती है। याहिया खान के शासनकाल और भारत में श्रीनगर में हजरत बल मस्जिद में रखे पैगंबर साहब साहब के बाल गुम होने पाकिस्तान के द्वारा हिंदुस्तान के हवाई जहाज के अपहरण की घटनाओं के पश्चात प्रभाव का आकलन करते हुए कथा को बांग्लादेश में मुक्ति वाहिनी के संघर्ष पर केंद्रित करती है। इस क्रम में वह मुक्ति वाहिनी की संघर्ष यात्रा के कितने ही अनजाने पक्षों पर प्रकाश डालती है। यथा 17 अप्रैल की सुबह कुष्टिया जिले के मेहतपुर महकमा के बैद्यनाथ ताला गांव में 100 बीघा जमीन पर फैले आम के बगीचे

में 2000 लोगों की भीड़ जुटना और प्रजातंत्र बांग्लादेश के जन्म की घोषणा की दुर्दशा के रूप में दर्शन कोलकाता के 8 नंबर रोड स्थित दो तल्ला मकान में प्रवासी बांग्लादेश सरकार का दफ्तर आदि। 13 से 14 दिसंबर 1971 की रात में मुक्ति वाहिनी और भारतीय सेना वाहिनी का संयुक्त रुप से ढाका बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण आदि के बड़े घटना क्रम बनाते हैं।'[23]

दरअसल स्वतंत्रता के दौरान विभाजन का दर्द भी सामने आया और अमानवीय घटनाओं की तस्वीर हिंदी साहित्यकारों ने अपनी-अपनी रचनाओं के माध्यम से बड़े मार्मिक ढंग से उकेरा है। साहित्यकारों ने तत्कालीन राजनीतिक यथार्थ भी अभिव्यक्त किया है। धर्म की कट्टरता इंसान को किस प्रकार आदमखोर बना देती है, इस अमानवीय संवेदना की सच्ची और कड़वी तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। भारत विभाजन संबंधी अब तक जितने भी उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, उनमें विभाजन के विभिन्न आयामों की अभिव्यक्ति है। भारत ने जिस दर्द को सहा है उसे देश के कोने-कोने तक पहुँचाने का कार्य हिंदी उपन्यास साहित्य का अमूल्य योगदान है।

'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में विस्थापन की त्रासदी

'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास विस्थापन की पीड़ा के सन्दर्भ में विकसित नई मानसिकता को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। अलका जी के उपन्यास में शरणार्थियों की समस्याओं को, उनकी मनोदशा को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है। जनता की अदला-बदली से समाज में नई चेतना का विकास तथा जीवन व्यापार का अपनी समग्रता के साथ उदघाटन हुआ है। हिंदी उपन्यास के विकास-क्रम में 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास एक ऐसा महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो सदियों तक आने वाली पीढ़ी को हिन्दुओं के शवों पर खड़ी की गयी। पाकिस्तान की भव्य इमारत का दर्शन करा कर पूर्वी पाकिस्तान को आंसू बहाने के लिए मजबूर करता है। उपन्यास में एक ओर विभाजन के केंद्र में कार्य करने वाली राजनीति को दर्शाती है तो दूसरी ओर के स्वरूप को भी उभारा गया है जो देश में सांप्रदायिक दंगे और

हिंसक वातावरण को जन्म देती है। यह बांग्लादेश की आजादी की लड़ाई के दौरान मुक्तिवाहिनी आन्दोलन को भड़काती है। अलका सरावगी का यह उपन्यास विभाजन की राजनीति का तीव्र विरोध करता है और यह स्पष्ट रूप से कहता है कि देश की जनता विभाजन को किसी भी अर्थ में स्वीकार नहीं करती है। विभाजन की यह स्वीकृति कांग्रेस और मुस्लिम लीग की उच्च स्तरीय बैठकों तक ही सीमित रह गयी है, परन्तु इस स्वीकृति का सबसे बड़ा मूल्य देश की जनता को चुकाना पड़ गया।

बांग्ला देश द्वारा पश्चिमी पाकिस्तान के विरोध में अहिंसात्मक आन्दोलन का आरम्भ किया गया जिसके कारण आन्दोलन से जुड़े कई बड़े–बड़े नेता जेल भी जाते हैं। इस संघर्ष को बढ़ावा देने हेतु प्रतिदिन अहिंसात्मक जुलूस भी निकाला जाता है। इस उपन्यास में अनिल मुखर्जी, गोपाल बाबू, डॉ. कासिम शाह आदि अन्य नाम हैं, जो इन संघर्षों की लड़ाई में शामिल है। इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात यह अनुभव किया जा सकता है कि अपना हाथ-बाजार, घर, भाषा को छोड़ना कितना तकलीफ देय होता है। अलका जी ने सर्वहारा वर्ग की तह में जाकर उसकी मनः स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है कि 'सर्वहारा' अपनी गरीबी को छुपाकर रखता है ताकि वह इज्जत से जीवन जी सके।

पलायन का दर्द इतना खौफनाक होता है कि इसकी कल्पना मात्र से ही हमारे मन में अनेक मार्मिक विचित्र बिंब प्रस्तुत होते हैं। अमीरों के लिए उसके सम्मानित नाम को खोना, संपति का लूटना आदि जैसे स्वयं की आत्मा को खोना है। दूसरी ओर गरीबों के लिए सबसे बड़ा दर्द उनके आस-पड़ोस को खोना है, जो अक्सर विपरीत परिस्थितियों में सुख-दुःख के भागी हुआ करते थे। उपन्यास में श्यामा धोबी के पिता की चिंता थी कि किसके कपड़े धोयेंगे वहां ? हमारा घर-द्वार, हमारी नदी, हमारा धोबी घाट छोड़कर हम कहाँ जायेंगे ? पलायन की लम्बी कहानी रिफ्यूजियों का लम्बा कारवां रहा है। उनके लिए 'रिलीफ एंड रिहैबिलिटेशन डिपार्टमेंट' शिविर था और यहाँ पर बांग्लादेश से आने वाले रिफ्यूजियों का नाम दर्ज होता था और उन्हें अन्य कहीं स्थान पर भेज दिया जाता था। "1949 के अप्रैल तक पूर्वी पाकिस्तान से लगभग

19 लाख शरणार्थी आ चुके थे, भारत का कोलकाता शहर कितना बोझ उठाता। भारत सरकार ने इन्हें बचाने के लिए पूर्वोत्तर के राज्यों के अलावा अंडमान, बिहार, उड़ीसा और छतीसगढ़ के दण्डकारण्य में 1957-1958 ई. में दण्डकारण्य प्रोजेक्ट को शुरू किया। इस प्रोजेक्ट का मूल उद्देश्य बांग्लादेश से आये गरीब हिन्दुओं और दलित शरणार्थियों को बसाने के लिए था। इन शरणार्थियों को वोट देने का अधिकार तथा राशन कार्ड जैसी आदि सुविधायें दी गयी, परन्तु कुछ लोग आज भी नागरिकता से वंचित हैं।"[7]

'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में कुलभूषण ने देखा कि रेल में प्रायः शूद्र जाति के लोग थे– जिसमें किसान, मजदूर, नाई-कुम्हार छोटे दूकानदार आदि शामिल हुए थे। यह उपन्यास पूर्वी पाकिस्तान में ही नहीं, बल्कि भारत में भी फैली साम्प्रदायिकता का चित्रण करता है। रेल के रायपुर तक पहुँचने पर, पूरी के रास्ते में लूटपाट, पेट में छुरा मारने से खून के फव्वारे छोड़ते लोग, बलात्कार की जाती औरतें, उठाकर ले गयी लड़कियां और औरतें, मारकर नदी में फेंके गए बच्चे आदि का चित्र खींचा गया है।

यह उपन्यास अमानवीयता के यथार्थ को उभारता है। पूर्वी पकिस्तान का पश्चिमी पाकिस्तान से अलग होने के संघर्ष के दौरान कई लोग अपने-अपने घरों से बेघर हो गए। वे सीमा को पार कर भारत में प्रवेश करने लगे थे। भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा रिफ्यूजियों के लिए रहत शिविरों की व्यवस्था की गयी थी, परन्तु शरणार्थियों की सुविधा हेतु लगाये गए राहत शिविरों का भी कुछ भ्रष्टों द्वारा दुरुपयोग किया जाने लगा। उपन्यास में रिफ्यूजी कैंप में चाटुकारिता के द्वारा ठगने वाले शरद नस्कर जैसे वाले लोग शरणार्थियों की मजबूरी का फायदा उठाकर उन्हें ठगकर अमीर हो गए थे। इसमें दिखाया गया है कि लोगों ने थोड़े से खाने के लिए क्या-क्या नहीं किया। "बाबू तुम देख ही रहे हो मेरी बेटी ललिता 14 साल की हो गयी है। इधर उधर खाने का जुगाड़ करती फिरती है। जहाँ भूख को मिटाने हेतु देह तक को बेचा जाता है।"[8] उन्हीं कैंपों में बलवान सिंह जैसे लोग भी हैं जो कहते हैं- "क्या लौंडे यही माल लाता रहेगा ? दूसरे माल का धंधा भी कर। वहां छोकरियाँ भी बहुत हैं। एक दो ले आ 10 रुपये की बक्शीश दूंगा।"[9] 700

नदियों वाले देश पूर्वी बंगाल के प्रत्येक जन के पास अवश्य ही एक नदी रही हो जो तत्कालीन परिस्थितियों पर सब आंसू लिए रो रहे हैं। उपन्यास में बांग्लादेश को आजाद कराने का संघर्ष और जय बंगाल का नारा देते लोग अपने प्राणों तक को न्योछावर करने को तैयार रहते हैं। इस संघर्ष का व्यापक चित्र इस उपन्यास में मिलता है। इस सशत्र युद्ध का आधार स्त्रियों के देह पर लड़ा जा रहा था।

वहीं दूसरी तरफ अमला श्यामा का प्रेम तथा मल्ली का नामकरण धर्म, जाति के हाशिए पर रखा गया है। 'मोहम्मद इस्लाम' भी एक ऐसा इंसान है जो इंसानियत का नाम दर्ज कर जाता है। कुलभूषण के पास भूलने का बटन है फिर भी वह मालविका की आत्महत्या का अध्याय बंद नहीं कर पाता है। वह टैगोर की उस पंक्ति को समझने का पूर्ण प्रयास करता है जिसे मालविका ने रेखांकित किया था –"गोरा के सामने उसका जीवन एक क्षण में जैसे सपना हो गया। उसकी माँ नहीं, पिता नहीं, देश नहीं, जाति नहीं, नाम नहीं, गोत्र नहीं, देवता नहीं।"[10] इन सब खालीपन के दुखों का उपन्यासकार ने बहुत ही मार्मिक वर्णन किया है| उपन्यास में पात्र 'कार्तिक बाबू' की मृत्यु पर अधिक भावुक होती है। कामरेड रोशन अली और श्याम के संवाद को असंवेदनशील की तरह दर्शाया है। उपन्यास में अनेक किरदारों के माध्यम से घटनाओं की बारीकी इतिहास का सम्मिश्रण, पारंपरिक उपन्यास शैली से हटकर एक अनोखे तरह की शिल्प आदि को समेटती हुई इतिहास में कुलभूषण श्यामा मल्ली आदि जैसे किरदारों को दर्ज कराती हैं। उपन्यास की मुख्य विशेषता है कि पूरे उपन्यास में अलका सरावगी जी ने कहीं भी हिन्दू-मुस्लिम नहीं होने दिया। उपन्यास की पूरी शैली ही निष्पक्ष है।

अलका सरावगी जी उपन्यास में कई शाश्वत सवालों को मार्मिक ढंग से रेखांकित करती हैं और साथ ही उसका समाधान भी बताती हैं। कथावस्तु के चयन, भाषा और शिल्प के लिहाज वे से बहुत ही समर्थ रचनाकार हैं। इनके पास अपनी एक अलग ही शैली है जो कहानी से कहानियां निकालकर लाने की क्षमता रखती हैं। इनकी रचनाओं में कहानियां एक परत से दूसरे परत को जोड़कर नई कहानी को रचती हैं।

विजय बहादुर सिंह ने कहा है- "आपके यहां निराला की कविताओं की तरह कई तरह की अर्थभंगिमाएँ हैं जो बहुरंगी पृष्ठों से बढ़कर एक ऐसे कथा चौपाल पर आती हैं जहां कहानी और जिंदगी के बीच की सीमा के एकरस उठती है। सरावगी जी के उपन्यास की कहानी इतनी रोचक व यथार्थवादी लगती है, यह हमारे समक्ष किसी फिल्म की तरह कुलभूषण की जीवन यात्रा चल रही हो। यह वर्तमान और अतीत के बीच जीवन और समाज की संपूर्णता को देखने में सफल उपन्यास है।"[11]

अलका सरावगी के उपन्यास साहित्य में विस्थापन संबंधी जिस दृष्टि का परिचय मिलता है वह भारत-पाकिस्तान विभाजन से हुई विसंगतियों का परिणाम है। मनुष्य जिसे सम्पूर्ण सृष्टि का आधार मानता है, जो निरंतर एक धुरी के समान घूमता रहता है, वह समाज के केंद्र में न होकर एक कल्पना बन जाता है। एक मात्र जमीन का विभाजन लोगों से उसकी अहमियत छीनना शुरू कर देता है।

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भारत-विभाजन की ऐतिहासिक त्रासदी को उन्हीं रचनाकारों के साहित्य में अनुभव करते हैं जो पाकिस्तान से पंजाब आये थे। यह स्वाभाविक है कि उन रचनाकारों का भूगोल पश्चिमी पाकिस्तान, पंजाब और उसके आस-पास का क्षेत्र हो। पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पाकिस्तान का परिदृश्य अब तक हिंदी साहित्य में अछूता था, इस पक्ष से यदि देखा जाये तो अलका सरावगी द्वारा रचित 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास हिंदी साहित्य के एक बड़े अभाव को पूर्ण करने वाला उपन्यास है।

अलका सरावगी जी ने अपनी विचारधारा के अंतर्गत सामाजिक विचार से समाज की उस दुर्दशा को उजागर किया जिसमें आजादी के समय नोआखली के दंगे, तीन साल बाद बारीसाल के दंगे और 17 साल बाद 1964 में कश्मीर के हजरतबल से मोहम्मद साहब की दाढ़ी के बाल के चोरी हो जाने के बाद भड़के दंगों के साथ-साथ मुक्तिवाहिनी के संघर्ष के स्वरूप को उजागर किया है। नई सामाजिक स्थिति और परंपरागत नैतिक मान्यताओं के बीच विस्थापन के अंतर्द्वंद का आभास लेखन में देखा जा सकता है, जो विस्थापित व्यक्तियों की छटपटाहट का सहज और ईमानदार दस्तावेज है। अलका जी के साहित्य में

विस्थापन की त्रासदी उनकी वैचारिकता की गति को प्रवाह देता है । देश विभाजन के बाद पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान में चल रहे विवाद के कारण देश के अन्य जनों को कई प्रकार की यातनाएं झेलनी पड़ती हैं तथा इसके कुत्सित परिणाम के प्रभाव से लाखों-लाख हिन्दू-मुसलमान बर्बाद हो गए।

अलका सरावगी के लेखन में पूरा परिदृश्य सूक्ष्मता से बना हुआ प्रतीत होता है। कथा का प्रवाह कहीं-कहीं भटकता और अटकता है, परंतु यह अनुभव बना रहता है कि हम जो पढ़ रहे हैं, वह मूल्यवान है। यह उपन्यास समय के उस काल खंड में अवतरित/उपस्थित हुआ है जब भारतीय उपमहाद्वीप में साम्प्रदायिकता अपने चरम स्तर को छूती हुई प्रतीत हो रही है और भारत के भीतर भी नागरिकता को पुन: परिभाषित करने के प्रश्न पर समाज दो भागों में बाँटा हुआ महसूस हो रहा है। एक तरफ़ इसे पुन: परिभाषित करने की माँग जोर पकड़ रही है और सरकार भी इसके पक्ष में काम करती हुई प्रतीत हो रही है, तो दूसरी तरफ़ इसके ख़िलाफ लोग धरना और प्रदर्शन कर रहे हैं।

'उपन्यास कोलकाता शहर से प्रारम्भ होता है। दरअसल बांग्लादेश के कुष्टिया जिले की जहाँ से पहले 1947 में फिर 1971 ई. में हिंदू परिवार पलायन कर के कोलकाता आते हैं और यह बहुत ही संवेदनशील दृष्टि से विभाजन और विस्थापन से जुड़े सांस्कृतिक, सामाजिक, और आर्थिक/राजनैतिक पहलुओं को उद्घाटित करना है।'[12] इसमें बँटवारा राजनैतिक धरातल से शुरू हो कर विभाजन का रूप लेते हुए परिवार के भीतर के अंतर्द्वंद एवं अलगाव (बँटवारे) की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करता है। उपन्यास का मुख्य-नायक कूलभषण का परिवार एक व्यापारी परिवार था जो दो पीढ़ियों से कुष्टिया में रह रहा था और मारवाड़ियों में काफ़ी सम्मानित परिवारों में गिना जाता था, लेकिन 1947 के भारत विभाजन के पहले से ही पूर्वी पाकिस्तान (कालांतर में बांग्लादेश) के हालात साम्प्रदायिक रूप से बिगड़ने लगे थे । पूर्वी पाकिस्तान के बनने के बाद तो हालत और भी गंभीर हो गए। लोगों को खासकर ग़ैर-मुस्लिमों का अपने घर-बार छोड़ कर कोलकाता/कलकत्ता और उसके आसपास के क्षेत्र में पलायन शुरू हो गया था। बिगड़ते

हालात को देखते हुए कूलभूषण के पिता उसके दोनों बड़े भाइयों को परिवार के साथ कलकत्ता भेज देते हैं। अब कुष्टिया में सिर्फ़ कूलभूषण अपने पिता के साथ रह जाता है। उसके पिता भी पलायन करना चाह रहे थे, लेकिन अपने मकान/सम्पत्ति के उचित मूल्य मिलने तक रुकना चाहते थे और इस आशा में कूलभूषण को अपने पिता के साथ कुष्टिया में ही कई वर्षों तक रहना पड़ जाता है। अंत में जब 1971 के युद्ध और बांग्लादेश के निर्माण के पूर्व हालात और भी बिगड़ जाते हैं तो दोनों बाप-बेटे को सब कुछ छोड़ कर या यूँ कहें कि सब कुछ लुटवा कर पैदल ही कलकत्ता वापस आना पड़ा। इस प्रकार जब वह शरणार्थी के रूप में कलकत्ता आता है तो अपने हीं परिवार में शरणार्थी हो जाता है। अपने ही परिवार वालों के द्वारा उसके ऊपर चोरी का इल्ज़ाम लगाया जाता है, वह उपेक्षा का शिकार होता है और अपने ही परिवार में नौकरों सा व्यवहार होता है। लेकिन साथ ही उसे परिवार के कुछ सदस्यों की सहानुभूति भी मिलती है, जो आगे चल कर उसकी बुरे वक़्त में मदद भी करते हैं।

कुष्टिया में कूलभूषण 'कूलभूषण बाबू' था और व्यापार व सौदे के मामले में उसका कोई जोड़ नहीं था। इलाके में उसकी होशियारी की चर्चा थी, वहीं 'कूलभूषण बाबू' कलकत्ते में हर तरफ असफल साबित हो रहा था। लोग उसे निरा मूर्ख, बेवकूफ और कमअक़्ल समझने लगे थे। वह इन विषम परिस्थितियों में हर एक काम को करता है चाहे वह बस में कंडकटरी ही क्यूँ ना हो। लेकिन परिवार के लोगों के दुतकारे जाने की वजह से उसे यह काम भी छोड़ना पड़ता है। निरंतर हो रहे अपमान और अवहेलना से तंग आ कर अंततः वह घर छोड़ कर शहर के दूसरे छोर पर एक बंगाली मोहल्ले में एक कमरे के छोटे से मकान में रहने लगता है। यहाँ तक कि वह अपनी वास्तविक पहचान छुपा कर 'गोपाल चंद्र दास' बन जाता है। जैन परिवार से होते हुए भी एक बंगाली माँस, मछली खाने वाली लड़की 'रीमा' से विवाह करता है और सफल वैवाहिक जीवन-यापन करता है, परन्तु वह जीवन के द्वन्द के बीच फँसा हुआ है क्योंकि उसकी सामाजिक सक्रियता अलग तरह की है और उसका जीवन उससे बिलकुल ही भिन्न है। दो पहचानों के बीच उसकी

ज़िंदगी बहुत सारी विडम्बनाओं से गुज़रती है। यह यथार्थ को दर्शाता है जो सचेतना से जोड़ने वाली सच्चाई को भी उभारता है।

कूलभूषण के मित्र श्यामा धोबी ने जिस मानवता को उभारा है वह आज के परिप्रेक्ष्य में भी बड़ी कहानियों से स्वीकारा जाता है। श्यामा धोबी को एक दिन पता चलता है कि वह न हिंदू है, न मुसलमान उसे कुष्टिया के लालन फ़क़ीर ने पिता के हाथ सौंपा है। उस दिन से वह स्वयं को कठोर बनाता है और देश की सेवा में अपना पूर्ण योगदान देता है। वह बांग्लादेश के दंगों में मारे गए एक मुस्लिम दोस्त अली की गर्भवती पत्नी को अपने घर में सम्मानपूर्वक रखता है। उसकी बेटी को अपना नाम देकर उपन्यास में अपनी गरिमा बढ़ायी है। कुलभूषण जैन के पास उसके मित्र श्यामा धोबी द्वारा दिया गया वह बटन है जिससे वह अपने सभी दुःख दर्द, तकलीफ को उसे दबाकर भूल जाता है।

कुलभूषण अपने ही परिवार के द्वारा शिकस्त खाते हुए रहता है और मुसीबतों से जूझना उसके जीवन के प्रति जीजिविषा को दिखाता है। वह एक बड़े घर का सदस्य है लेकिन इसके बावजूद भी उसके जीवन में छोटी-छोटी चीजों के लिए तरसना, उसका रंग काला होने के कारण परिवार का उसके प्रति उपेक्षा भाव मन को उद्वेलित करता है। अलका सरवगी जी की दृष्टि जिस तरह बाँटने वाले यथार्थ को दर्शाती है, उतनी ही सचेतना से जोड़ने वाली सच्चाइयों को भी उभारती है। वे कुलभूषण जैन के जरिये बंगाल के विभाजन और विस्थापन का अंकन करती हैं। उपन्यास में जमीन का विस्थापन तो है ही वहीं दूसरी ओर रिश्तों से भी खारिज कर देने वाली स्थिति का भी अंकन किया गया है। इसमें मनुष्य के स्वभाव का दर्शन होता है। कुलभूषण अपनी जड़ों से विस्थापित होता है, फिर भी वह अपने मूल से सदैव जुड़ा रहता है। इनकी एक विशेष शैली है जिससे वह अलग ही तरह की कहानियां निकालकर लाती हैं और इन कहानियों के माध्यम से महसूस किया जा सकता है कि उनमें एक परत दूसरी परत से जुड़कर नई कहानी रची जाती है।

कुलभूषण के भीतर ऐसी चाहत के किले हैं कि वह दो पहचानों के बीच अपने आप को टूटा हुआ पाता है। वह बस में कंडक्टर का काम करता है। जब यह बात उसके परिवार वालों को पता चली तो वह उनके द्वारा दुत्कारा जाता है। इन्हीं विसंगतियों के बीच वह तड़पता है। उपन्यास में पारिवारिक त्रिकोण में कुलभूषण, प्रशांत और मालविका हैं। तीनों अलग-अलग जाति और धर्म के हैं, परंतु वह संस्कृति में एक हो जाते हैं। मालविका जैविक रूप से ना तो श्यामा की पुत्री है, ना ही कुलभूषण की पुत्री है, परंतु उसकी आत्महत्या एक रहस्य है। इसका सही कारण कुलभूषण नहीं जान पाता है। अलका जी एक इंटरव्यू में कहती हैं कि- 'मुझे लगता है कि मालविका प्रशांत को प्रेम करती थी, वह किसी और से शादी कर एक और विस्थापन के लिए तैयार नहीं थी। मालविका बचपन से ही विस्थापन देख रही थी, इसलिए शायद एक नये सिरे से होने वाले विस्थापन को वह किसी भी तरह स्वीकार नहीं करना चाहती थी। उनके लिए दोबारा जमाई हुई जड़ों से दुर्घटना तकलीफदेह है कि वह जीवन की कल्पना ही नहीं कर पाती है। वह पारिवारिक विस्थापन की एक और त्रासदी का अनुभव नहीं चाहती है।'[13]

अलका जी की इस किताब 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' का प्रथम पृष्ठ हमें ठहरकर आखिरी पृष्ठ तक पढ़ने को मजबूर करता है- "डेढ़ चप्पल पहनकर यह काला, लम्बा दुबला शख्स कौन है ? हर बात पर वह इतना खुश कैसे दिखता है ? उसे भूलने का बटन देने वाला श्यामा धोबी कहाँ छूट गया ? कुलभूषण को कुरेंदेंगे तो इतिहास का विस्फोट होगा और कथा-गल्प- आपबीती जगबीती के तार निकलते जायेंगे। कुलभूषण पिछली आधी सदी से उजड़ा हुआ है। देश, घर, नाम, जाति, गोत्र तक छूट गया फिर भी अर्ज कर रहा है माँ-बाप का दिया कुलभूषण जैन नाम दर्ज कीजिये। इस किरदार के आसपास के संसार में किसी भी प्रकार का कोई दरवाजा-ताला नही हैं। लेकिन फिर भी इसकी तिजोरियों का रहस्य दफ़न है। एक लाईन ऑफ़ कण्ट्रोल, दो देश, तीन भाषाएँ, पांच से अधिक दशक, कुलभूषण जैन ने सब देखा, जिया और समझा

है। जिन त्रासदियों को हम इतिहास का गुजरा समय मान लेते हैं, वे वर्तमान तक आकर कैसे बेखबरी से हमारे इर्द गिर्द भटकती रहती हैं।"[14]

यह उपन्यास एक ऐसे अचूक इतिहास पर दृष्टि डालता है जो पूर्वी बंगाल से आजादी से चलता गया लगातार विस्थापित भारत में शरणार्थियों को बंगाल से बाहर राम-सीता के निर्वासन की भांति दंडकवन में बसाने की कोशिश सारी कथाएं एक मार्मिक महाख्यान रचती हैं। इसके भीतर एक मानवीय आशय है जो किरदार की निरीहता और प्रौढ़ता को पाठक के मन को शंकित कर देता है। इतिहास, भूगोल, संस्कृति, साम्प्रदायिकता, जाति व्यवस्था, समाज और इन सबके बीच कैसे लोगों की बेदखलियों से परिचय यह कथा किस्सागोई की लचक के साथ करवाएगी। अलका सरावगी जी जिन्दा धड़कते भूगोल का सृजन वाली लेखिका के रूप में उभरती हैं। उनका उपन्यास अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में ही जाना जाता है। उन्होंने अपने किरदारों के माध्यम से ठोस अवस्थिति का बोध कराया है, जिसका पाठकों के स्नायु तंत्र पर गहरा प्रभाव पड़ता है। हिन्दू और मुसलमान जिस प्रकार खुद को परिवर्तित करते हैं, दंगों में जिस प्रकार उन्होंने खून बहाया है, उसका वास्तविक चित्रण किया गया है। उपन्यास में कुलभूषण जैन को केन्द्रीय पात्र के रूप में रखा गया है, जिसके माध्यम से बांग्लादेश के कुष्टिया जिले से कोलकाता तक और आगे के पलायन के दर्द को दर्शाया गया है।

'14 अगस्त 1947 ई. को दुनिया के नक्शे में पाकिस्तान का उदय हुआ जिसकी विडंबना यह थी कि उसका एक हिस्सा पूर्वी पाकिस्तान 1400 किलोमीटर दूर था। पूर्वी पाकिस्तान की विशेषता थी कि यहाँ बांग्ला संस्कृति की भाषा थी, परन्तु आगे चलकर यहाँ उर्दू को राष्ट्रीय भाषा के रूप में थोपने का प्रयास हुआ। बांग्ला भाषा आंदोलन 1952 में घटित एक सांस्कृतिक एवं राजनैतिक आंदोलन था जिसे भाषा आन्दोलन भी कहते हैं।'[15] इस आन्दोलन की मांग थी कि बांग्ला भाषा को पाकिस्तान की एक आधिकारिक भाषा की मान्यता दी जाए तथा इसका उपयोग सरकारी कामकाज में, शिक्षा के माध्यम के

रूप में, संचार माध्यमों में आदि पर जारी रखा जाये। इसके अलावा बांग्ला भाषा को बांग्ला लिपि में ही लिखना जारी रखा जाये। अंततः यह आन्दोलन बांग्लादेश मुक्ति संग्राम में बदल गया।

'1971 में भारत पाकिस्तान की आधार शिला पर बांग्लादेश मुक्त हुआ। बांग्लादेश में 21 फरवरी को 'भाषा आन्दोलन दिवस' के रूप में याद किया जाता है। भारत-पाकिस्तान के विभाजन पर खूब साहित्य लिखा गया है, परन्तु पूर्वी पाकिस्तान के विस्थापन पर केन्द्रित कम ही लिखा गया है। 1971 के युद्ध को लगभग 50 वर्ष हो गए है, फिर भी अलका सरावगी का यह उपन्यास एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है, जो सदैव याद किया जायेगा।'[16] यह कहानी एक सिरे से शुरू होकर दूसरी तह को पकड़ती है जिसमें पत्रकार और कुलभूषण के वार्ता के बीच कहती चली जाती है। शुरूआत में कुलभूषण 'आत्मकथा' नामक नाटक के पोस्टर पर निगाहें डालता है और ठहर जाता है। नाटक के नायक के रूप में कुलभूषण ही है और अपने वजूद को बचाने के संघर्ष में लगातार जुड़ा हुआ है। उपन्यास के नायक कुलभूषण जैन की जिंदगी के माध्यम से पूर्वी बंगाल की आजादी के साथ शुरू हुए विस्थापन और शरणार्थियों के निर्वासन की कहानी को राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं के बीच पिसते हुए मनुष्यों का परिचय कराया गया है। कुलभूषण जैन की मुस्कुराहट उसके चेहरे पर जादू की छड़ी फेर देती है। उसे भी इस बात का आभास था। बचपन से ही स्वयं को शीशे में देखकर वह मायूस होता था। वह अपने सभी भाई-बहनों में सबसे अधिक कुरूप था। उसका रंग मटमैला और ऊपर से उसके नाक-नक्श भी कहीं चिपके तो कहीं फूले हुए थे। जाने किस दोष का ऊपर वाले ने उसे यह दंड दिया था या फिर उसके साथ मजाक किया था। जिसके कारण वह स्वभाव से क्रोधी होता गया। घर के बाकी सदस्यों से महत्त्व न मिलने पर वह इन सबका बदला माँ से लेता था।

बेहद ही रोचक बात यह है कि कुलभूषण के पास भूलने वाला बटन है जिसके बारे में उसके किशोरावय मित्र श्यामा धोबी ने बताया था- 'अरे कुलभूषण अपने शरीर में ऊपर वाले ने एक ऐसा बटन लगाया है कि बस अपनी उंगली उस पर रखी और तुम सब भूल जाओगे कि लोग तुम्हारे ऊपर कैसे हंसते

हैं। बटन दबाया कि तुम्हारी आत्मा में खुशी की लहर दौड़ने लगेगी। तुम दुखी रहना चाहोगे तो भी नहीं रह पाओगे।' कुलभूषण का मित्र इतना बदसूरत था कि शायद उससे बदसूरत इंसान नहीं हो सकता था। वह तवे की तरह काला और उसका पूरा चेहरा दाग धब्बे व गड्ढों से पटा हुआ था। उसकी आंखों में सफेदी के कारण पता ही नहीं चलता था कि उसकी आंखें भी हैं। कई प्रकार की शारीरिक कुरूपताओं के कारण भी उसे ना जाने क्या खजाना मिला हुआ था कि वह सदैव खुश रहता था।

कुलभूषण बांग्लादेश के कुष्टिया जिले के एक जैन व्यापारी के परिवार का सदस्य था। उसके चार भाई थे। कुष्टिया से लोगों के विस्थापन की कहानी 1947 और 1971 से शुरू हो चुकी थी। उस दौरान कुष्टिया से भी लोग भागकर कोलकाता आते थे। दंगे होने पर कुलभूषण के पिता अन्य भाइयों को कोलकाता भेज देते हैं। कुलभूषण अपने पिता के साथ कई वर्षों तक कुष्टिया में रहा, परंतु जब हालात बद से बदतर हो गये उन्हें भी पलायन करना पड़ा। कुलभूषण सबकुछ गंवाकर कोलकाता आता है, तब वह अपने ही घर में शरणार्थी जैसा हो चुका है।

उपन्यास में लेखिका ने हिंदुओं के विस्थापन या उन पर किसी अत्याचार का वर्णन नहीं, बल्कि देश के साथ-साथ परिवारों के विभाजन के जिम्मेदार पहलुओं की दूरी के बारे में बताया है। कुलभूषण की अपने ही परिवार में उपेक्षा और भूलने वाले बटन की उपस्थिति उसके व्यक्तित्व को कुछ अंजाने रहस्य में परिवर्तित कर देती है। परिवार के द्वारा ही उस पर चोरी का इल्जाम लगाया जाता है और उससे नौकरों की तरह काम लिया जाता है। घर के प्रत्येक छोटे बड़े सदस्यों के द्वारा अपना शोषण करते हुए देखकर भी कुलभूषण अपनी एक नवीन दुनिया में मस्त है। जो कुलभूषण कुष्टिया का एक कुशल व्यापारी था वह कोलकाता आकर मानो किसी काम का नहीं रह जाता है। वह कई प्रकार का काम करता है परंतु किसी ना किसी वजह से असफल हो जाता है। वह कोलकाता में आकर अपने भाइयों से प्राप्त उपेक्षा के कारण अपने घर से कुछ दूरी पर अपना नाम बदलकर गोपाल चंद्र दास बनकर रहता है और एक बंगाली लड़की जिससे

वह प्रेम करता है उससे विवाह कर लेता है। कुलभूषण अपनी दो पहचान लिए हुए विषम परिस्थितियों को झेलते हुए कभी हार नहीं मानता है। वह अपने परिवार के कुछ सदस्यों द्वारा समर्थन भी पाता है जो समय-समय पर उसकी मदद भी करते हैं।

'कहानी का दूसरा पक्ष कुलभूषण का मित्र श्यामा धोबी को केंद्र में लाता है जिसे किशोरावस्था में यह पता चलता है कि उसके माता-पिता ही उसके अपने नहीं, बल्कि उसे किसी फकीर ने उसके माता-पिता को सौंपा था। इस उपन्यास का नायक श्यामा धोबी तो नहीं कहा जा सकता है परंतु इसकी उपन्यास में भूमिका महत्वपूर्ण है। पूर्वी पाकिस्तान में बढ़ रहे दंगों में मारे गए मुस्लिम दोस्त की गर्भवती पत्नी को सम्मानपूर्वक अपने घर लाता है। उसे पत्नी का दर्जा देकर अपने ही घर में रखता है। वह उसकी बेटी को भी अपनाता है हालांकि बांग्लादेशी आंदोलन के दंगों में अमला और श्यामा दोनों उसकी भेंट चढ़ जाते हैं और उनके मूक आदर्श प्रेम का दुखद अंत होता है। उनकी बेटी का नाम मालविका था जिसका पालन-पोषण भी कुलभूषण ही करता है। कुष्टिया में पाकिस्तानी सेना के अत्याचार से सिर्फ हिंदू वर्ग ही नहीं, बल्कि मुसलमान भी काफी हद तक प्रभावित होते हैं। उपन्यास में पात्र डॉ. कासिम जो पाकिस्तानी सेना के खिलाफ इस लड़ाई में सक्रिय भाग लेते हैं, जिसके कारण उनका भी बुरा असर होता है। डॉ. कासिम पर हुए अत्याचार को देखते हुए हम कह सकते हैं कि इसमें मानवता को असंख्य बार शर्मसार किया है।

उपन्यास का एक पात्र अनिल मुखर्जी है जो कुष्टिया के संभ्रांत नागरिक हैं जिन्होंने सदैव दूसरों की मदद की है। उनके ही द्वारा ना जाने कितनी ही परिवार की रोजी-रोटी चलती है। उपन्यास में देखा जाता है कि एक विश्वास से भरे वैवाहिक समारोह में उनका अपना परिवार भी कत्ल लूटपाट और बलात्कार का शिकार हो जाता है। कुलभूषण अनिल मुखर्जी को ढूंढते ढूंढते दंडकारण्य तक चला गया तथा उसके दंडकारण्य तक पहुंचने की यात्रा बेहद ही रोचक है। अपनी यात्रा के दौरान वह कई ऐसे लोगों से भी मिलता है जो अपना सब कुछ खोकर भी पुनर्वास का सपना संजो कर जी रहे हैं। जिस पत्रकार को कुलभूषण अपनी

कथा सुना रहा था उसके बारे में वह सोचता है कि यह पत्रकार बहुत ही चालाक किस्म का प्राणी है जिसने उससे सारी बातें पूछ ली हैं। कौन जाने उसकी मंशा क्या है। इस विषय में कुलभूषण सदैव चिंता करता है और कहता है कि-कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिएगा।

'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास का एक संस्था द्वारा बनाई गई एक फिल्म में दिखाया गया है। कुलभूषण को कुरेदने से साहित्य का विस्फोट होगा और कथा कल्प आपबीती अपने आप निकल जाएंगे। कुलभूषण पिछली आधी सदी से उजड़ा हुआ है। देश, घर, नाम जाति तक उसका छूट गया है। फिर भी वह अर्ज करता है कि मां-बाप का दिया कुलभूषण नाम दर्ज कीजिए एक लाइन आफ कंट्रोल दो देश, तीन भाषाएं, और पाँच से अधिक दशाएं कुलभूषण ने अपने जीवन में देखा। अपने बड़े भाई के बंगले में केयरटेकर की नौकरी करना उसके लिए उतनी ही मजबूरी है जितना अपने मोहल्ले में कुलभूषण की जगह गोपाल चंद्र दास बनकर रहने की है।'[17]

पत्रकार और कुलभूषण के बीच के संवाद कुलभूषण की स्थिति को और स्पष्ट करते हैं-

कुलभूषण- "कौन कहता है नाम में क्या रखा है। पसीना और पसीने की कोलकाता के बस कंडक्टरी के दिनों को याद करता करता हूं तो यही सब याद आता है। अरे हां पुरानी चरमराती बसें, उसकी आवाजें, काला-काला धुआं। रात को जब घर पहुंचता और खांसता तो काले काले बलगम निकलते हैं। काले बाल चिटचिटाते कपड़े, लेकिन काम बुरा नहीं था। परिवार का पेट पाल लेता था और आपको तो पता ही है उन दिनों बेरोजगारी के क्या हालात थे। हर तरफ नारे लगते थे या हर तरफ हड़ताल 'गली-गली में शोर है जीएम शाह चोर', है देखिए मुझे आज भी यह नारा याद है।"[18]

पत्रकार- तो आप भी बेरोजगारी से बचने के लिए कंडक्टर बने हैं ?

कुलभूषण- "नहीं वैसे तो कलकत्ते में रिफ्यूजीयों के लिए कई नौकरियां थी। कलकत्ते में अखबारों में इश्तिहार दिया जाता था रिफ्यूजियों को नौकरी में रखने के लिए लेकिन उन में साफ लिखा होता था घर में बच्चों से पढ़ाने से लेकर सारे काम करने पड़ेंगे।"[19]

पत्रकार- "अच्छा आपने बताया कि दंडकारण्य से लौटने के बाद आप ने सबसे पहले साड़ी प्रिंटिंग कारखाने में काम सीखा था। उसका क्या हुआ ?"[20]

कुलभूषण- "वही हुआ जो मेरे साथ होता आया है 'करे कोई भरे कोई'। कंपनी का मैनेजर एक नंबर का चोर था। प्रिंटिंग के लिए साड़ी के बंडल में से उसने एक बंडल चुराया और इल्जाम मुझ पर लगा दिया। कंपनी ने पुलिस भेजी और मुझे जेल जाना पड़ा। कोर्ट में पेशी हुई तब जाकर मैं कहीं बच सका। मैंने कोर्ट में अंग्रेजी में बयान दिया कि मैं पूर्व बंगाल का धनी घर का काम सीख कर कारखाना खोलने के उद्देश्य से वहां गया था। यह बात सुनकर जज और वकील सब हक्के-बक्के रह गए। मैंने उनसे कहा साहब शक्ल पर मत जाइए यह शक्ल आपकी भारत सरकार की दी हुई है, जिसमें बिना कुछ सोचे-समझे अपने ही लोगों को मारे व लूटे जाने के लिए एक दूसरी सरकार के हाथ में दे दिया।"[21]

उपन्यास पूर्वी बंगाल के हिस्से के ऐसे ही बदनसीब लोगों की गाथा है जो विस्थापन की वेदना के लिए एक शरणार्थी के रूप में आया है। नाम छुपा कर जीना कुलभूषण की नियति है। उसी प्रकार के उसके अस्तित्व को बचाए रखने की इच्छा है। कौन नहीं चाहता कि उसका नाम इतिहास में दर्ज हो, परंतु कभी-कभी इतिहास में दर्ज होने के लिए समय की चक्की में बहुत ही महीन पिस जाना पड़ता है। इतिहास में दर्ज होने के लिए ना खत्म होने वाले संघर्ष में समा जाना पड़ता है। उपन्यास में पात्रों के माध्यम से निजी जीवन की राजनीतिक, सामाजिक सच्चाई उभरकर हमारे समक्ष प्रस्तुत हुई है जो जीवन अनुभव में परिणत हो रही है। कुलभूषण जैन के व्यक्तित्व की सुलझी-अनसुलझी ऊहापोह बहुत ही मार्मिकता के साथ प्रस्तुत है जो हमें सहजता से उनके साथ जोड़ लेती है। कुलभूषण जैन का मेहनतकश लोगों के प्रति स्नेह का भाव रखने

के कारण उसे हीन दृष्टि से देखा जाता है तथा लोग उसे पागल समझते हैं। जबकि वह एक अद्भुत व्यक्तित्व का धनी है।

उपन्यास में उद्घाटित कहानियां एक विशेष संप्रदाय के प्रति घनघोर नफरत और सांप्रदायिकता को हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन में एक मूल्य की तरह प्रस्तुत किया गया है। आज जब बांग्लादेश को आजाद हुए 50 वर्ष से अधिक का समय हो गया है तो दूसरी तरफ भारत के प्रधानमंत्री के विरोध में बांग्लादेश में प्रदर्शन हो रहे हैं। एन.आर.सी और सी.ए.ए. के कारण दोनों देशों के रिश्ते में उतार-चढ़ाव देखे जा रहे हैं। ऐसे जनविरोधी समय में अलका सरावगी जी अपने उपन्यास के माध्यम से ऐसे पात्रों को जिंदा कर रही हैं जो विभाजन के दौरान पुलिस, सेना, नेताओं की सत्ता-लोलुपता और असामाजिक तत्वों की दरिंदगी ने उन्हें मानवीयता को नष्ट कर ही नहीं रहने दिया गया।

उपन्यास में एक स्थान पर कुलभूषण द्वारा यह बताया जाता है कि जब वे लोग पूर्वी पाकिस्तान से स्वयं मंदिर की मूर्तियां लेकर विस्थापित हुए थे तो किस प्रकार जैनी लोग मूर्ति को सफेद कपड़े में लपेटकर मूर्ति को मरे हुए बच्चे की तरह गोद में लेकर आए थे। इस मूर्ति को लाने में शुभदा नश्तर ने जो अपनी भूमिका निभाई थी, उसकी भरपाई उसकी पुत्री की मदद करके चुकाता है। उपन्यास में कहानी की शुरुआत सन 1947 से शुरू होकर 1971 तक फैली हुई है जो अपने धर्म, भाषा, संस्कृति के प्रति आवाज उठाने को आग्रह करती है। इन सब के साथ ही हिंसक प्रवृत्ति भी शामिल है जिसमें प्रतिशोध भी है। पूर्वी पाकिस्तान की जमीन पर बांग्लादेश की नींव इसी पाकिस्तान के हम ही श्रेष्ठ की भावना के चलते हुई। बंगालियों को चावल खाने, काले पिलपिले लोग समझने वाले पश्चिमी पाकिस्तानी ने इन्हें 'बिंगो' (बांग्लादेशियों को कहे जाने वाले शब्द) कहकर मजाक बनाते थे। सूरज पालीवाल के अनुसार- "यह भी संयोग मात्र नहीं है कि 1946-47 में जिस साम्प्रदायिकता ने देश विभाजन से लेकर सदी की क्रूर हत्याओं और अमानुषिक

घटनाओं को अंजाम दिया था, वह साम्प्रदायिक उबाल का दौर था जिससे मनुष्य जाति का तन मन जल रहा था।"[22]

21 फरवरी 1952 ई. में पूर्वी पाकिस्तान पर जबरन उर्दू लादने के विरोध में पूरे ढाका में जबरदस्त जन आंदोलन हुए थे। पाकिस्तान सरकार द्वारा बंगालियों को शक की नजर से देखा जाने लगा था क्योंकि उन्हें वह सच्चा मुसलमान नहीं मानते थे। वहाँ स्कूलों और मदरसों तक में सुबह की प्रार्थना उर्दू में शुरू करने की घोषणा कर दी गयी थी। पश्चिमी पाकिस्तानियों को कविगुरु रवींद्रनाथ टैगोर से संबंधित होने वाले आयोजनों तथा कार्यक्रमों पर पूर्ण रोक लगा दी थी क्योंकि उनका मानना था कि इस्लाम धर्म में नाचना गाना निषेध है। भाषा संबंधी आंदोलन इतना प्रचंड रूप धारण कर लिया था कि 'राष्ट्र भाषा बांग्ला चाही' पोस्टर लेकर नारा लगाने वाले निर्दोष छात्रों पर पुलिस को गोलियां चलानी पड़ी थी।

इन परिस्थितियों को देखते हुए कुलभूषण सोच में पड़ गया था कि रवींद्रनाथ तो यही के हैं। कुष्टिया से बिल्कुल पास में ही उनकी जमींदारी है और यहीं बैठकर इन्होंने अनेक प्रसिद्ध रचनाएं लिखी हैं जिन पर इन्हें नोबेल पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया है, क्या पाकिस्तान की हुकूमत द्वारा रवींद्रनाथ की प्रसिद्धि को मिटा देने का प्रयास चल रहा है ?. इसी दौरान बांग्ला भाषी आन्दोलन में पुलिस की गोली से ढाका यूनिवर्सिटी के चार छात्र शहीद हो गए थे। इन छात्रों का स्मारक ढाका यूनिवर्सिटी के मुख्य द्वार के दाहिने ओर ढाका मेडिकल कॉलेज के पास शहीद मीनार नाम से बनाया गया है। उपन्यास में पूर्वी पाकिस्तान में रह रहे मुसलमानों के मध्य संघर्ष चलता रहा है जिनमें बिहारी-बंगाली का झगड़ा अंदर ही अंदर खोखला करता है। कुलभूषण के परिवार के लिए बंगाल के कुष्टिया जैसे छोटे कस्बे के दमनकारी माहौल में रहना और इसी मिट्टी में सांस लेना अत्यंत ही कठिन रहा है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हम कुलभूषण जैन से गोपाल चंद्र दास हो जाने में देखते हैं। कुष्टिया की हवाओं में खौफ तथा यहां की नदियों में उबाल था और देखते ही देखते संपूर्ण कुष्टिया की धरती भी सांप्रदायिकता की आग में झुलसने लगी थी जिसका उदाहरण उपन्यास

के पात्र अनिल मुखर्जी के परिवार के साथ हुई त्रासदी में देखते हैं, जिसकी तलाश में कुलभूषण अपना सब कुछ गंवाते हुए दंडकारण्य तक चला जाता है। दंडकारण्य के कैंपों में रहने वाले शरणार्थियों के जीवन का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत कर उनकी त्रासदी को उभारा गया है। हर सप्ताह टूटे हुए सड़े गेहूं, कंकड़ मिले घटिया चावल और साढ़े आठ रुपये की भीख पर पांच साल से जी रहा हूँ। रमाकांत ने चलते-चलते कहा कि इन लोगों ने भिखारी बना कर छोड़ा है। इसकी जगह जमीन देते तो कुछ इज्जत से जी सकता था।

'दुनिया भर में आज भी ऐसे विस्थापितों के दिल में छोटा सा सपना उठता है कि वह अपनी जन्मभूमि पर लौट जायें। स्वयं कुलभूषण भी कभी कुष्टिया को नहीं भूल पाता है। उपन्यास में दंगों के बहाने मानवीय त्रासदी की कहानी को उद्घाटित किया गया है । स्वतंत्रता के समय नोआखली के दंगे तीन साल बाद बरिसाल के दंगे और सन 1964 में कश्मीर के हजरतबल से मोहम्मद साहब की दाढ़ी के बाल चोरी हो जाने के बाद भड़के दंगों के साथ-साथ मुक्तिवाहिनी संघर्ष की पृष्ठभूमि में उन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक स्थितियों को भी प्रस्तुत किया गया है, जिसके कारण ही पूर्वी पाकिस्तान से बड़ी संख्या में हिंदुओं का पलायन होता है जिसके परिणामस्वरूप अपनी मां को लेकर कुलभूषण को भी कोलकाता की ढाका पट्टी में अपने भाइयों के पास लौटना पड़ा था।'[23]

कुलभूषण के नाम में ही एक मार्मिक विडम्बना छुपी हुई है। अपने कुल के लिए उपस्थित एक कलंक या दाग की तरह है। वह कुल के हाशिए पर फेंका हुआ पात्र है जो भारतीय समाज में एकता का विकलांग होना दर्शाता है। पत्रकार की स्थिति में अपनी पहचान को दर्ज कराना उन लाखों शरणार्थियों के लिए अपने को कहीं पा लेने की मुहिम है। कुलभूषण को डर है कि पत्रकार उसका नाम 'कुलभूषण जैन' न दर्ज करके गोपालचंद्र दास के नाम से न दर्ज कर ले।

विस्थापन के कारण सांस्कृतिक बदलाव भी जुड़ जाता है। भारत में तीव्र गति से औद्योगीकरण का विकास हुआ है जिसका आमजन पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है और यह सांस्कृतिक जनसंहार से कम नहीं है।

भारतीय संस्कृति उनकी सामाजिक संस्थाओं द्वारा कायम संबंधों के आधार पर यह जीवंतता बनी रहती है और विस्थापन इसी पारस्परिक बंधन के चिथड़े उड़ा देता है। उपन्यास में डॉ. कासिम जैसे लोग भी हैं जो हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए सदैव खड़े रहते हैं लेकिन एक तरफ बिहारी मुसलमान और दूसरी तरफ पाकिस्तानी मुसलमान तो बंगालियों को कीड़े-मकोड़े से ज्यादा नहीं समझते हैं। इन्हें बंगालियों के इस्लाम से कोई मतलब नहीं था और इस प्रकार के लोग बंगाल में अनेक प्रकार के दंगों को विकराल रूप देते हैं।

सांस्कृतिक क्षरण किसी भी देश की संस्कृति की विरासत को नष्ट करता है तो दूसरी ओर उसे अपनी मूल पहचान से अलग भी करता है। उपन्यास के माध्यम से यह सवाल सदैव बना रहेगा कि क्या हम इंसान बन पाए हैं ? कुलभूषण को ही देखिए जब वह बंगाली मोहल्ले में रहता है तो वहां की परिस्थितियों में ढलने के लिए अपना नाम भी बदल लेता है। बंगाली लड़की से शादी करता है। वह अपने मूल संस्कार में भी बदलाव लाता है। परंतु उसका नाम उसका पीछा नहीं छोड़ता है, तब वह कहता है- 'कुलभूषण नाम दर्ज कीजिए'। पत्रकार कहता है-"भूषण बाबू आपकी जिंदगी यूनिक है क्योंकि आप सिर्फ कुलभूषण जैन ही नहीं गोपाल चंद्र दास भी हैं लेकिन वह पत्रकार से बार-बार कहता है- कुलभूषण जैन ही दर्ज कीजिएगा फिर इतना आग्रह क्यों करते हैं ?"[24]

राष्ट्रीय गौरव को सर्वोपरि रखना हमारा मौलिक कर्तव्य है परंतु अपनी संस्कृति की शुद्धता को बनाए रखना हमारे अस्तित्व की पहचान है। अपने अस्तित्व की रक्षा हिंदू, मुसलमान या बंगालियों द्वारा अपनी संस्कृति भाषा को अपनाना है, ना कि धर्म को राजनीतिक कीचड़ में घसीटना है। आदमी की पहचान इतिहास में कहां है और उसकी कितनी वैधता है, इन प्रश्नों को कुलभूषण खोज रहा है।

उपन्यास में कथा को जीवन की अभिव्यक्ति की नई संज्ञा से प्रस्तुत किया गया है जो कुलभूषण के जीवन की कड़ी है। एक सामान्य आदमी को स्वाभाविक जीवन के समानांतर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। विस्थापन की त्रासदी का चित्रांकन इस प्रकार उपन्यास में दर्शाया गया है।

ईस्ट पाकिस्तान से इंडिया आते जाते कुलभूषण ने कई बार मरी हुई लाशें देखी थीं। एक बार तो जहां से वह लोग नौका पर चल रहे थे, वहीं सीढ़ियों के पास एक लड़की मरी पड़ी थी। किसी ने उस पर कोई कटा हुआ साड़ी का टुकड़ा डाल दिया था। विभाजन में उत्पन्न समस्याओं के निम्न स्तर है। उपन्यास में सम्प्रदायों के मध्य पनपने वाला अविश्वास विभाजन के पहले और बाद में हुआ। साम्प्रदायिक दंगे, निरपराध मनुष्यों की हत्या, संबंध टूटने की पीड़ा, अपनी भूमि से उजड़ने की पीड़ा, विस्थापित रूप में एक नए देश में बसने की अनेकानेक समस्या तथा स्त्रियों की दयनीय स्थिति जैसी अमानवीय समस्याओं को उपन्यास के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है।

'वास्तव में भारतीय इतिहास में स्त्री को अधीन रखने और शोषण करने के भी धार्मिक, नैतिक, और राजनैतिक मापदंडों को रोंदा गया है। इन कुरीतियों का सबसे ज्यादा शिकार नारी वर्ग ही रहा है। कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए उपन्यास में नारी जीवन की विभिन्न विषमताओं का चित्रण है।"[25]

उपन्यास में माया नस्कर की समस्याओं का कारण पुरुष की कमजोर मानसिकता को दिखाया गया है। शराबी पति कई-कई दिन तक घर नहीं आता। विभाजन के पूर्व उसके पास खानदानी घर था। अब वह रेल के किनारे झुग्गी बना कर रहते हैं। उसकी आठ साल की लड़की बांस बनाती है। वह पति के द्वारा कई बार प्रताड़ित ही होती है फिर भी वह वैयक्तिक स्तर पर जीवन जीती है। विस्थापन की स्थिति में महिलाओं पर अत्याचार और भी अधिक बढ़ जाते हैं। आज भी हमारे समाज में आर्थिक तथा सामाजिक सत्ता पुरुषों को स्थानांतरित होती है जबकि महिलाओं की पारंपरिक भूमिका में कभी भी बदलाव नहीं आता। विस्थापन के मुआवजे के रूप में पुरुषों को रोजगार के अवसर मिल जाते हैं। महिला को अपने परिवार की देखभाल के साथ ही बाहर के अन्य कार्यों में शामिल किया जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि देश की असली पहचान उसकी सांस्कृतिक विरासत होती है। जब व्यक्ति से उसकी पहचान छीन ली जाती है तो उसका अस्तित्व नष्ट होने की कगार पर आ जाता है। उपन्यास

में कुलभूषण के लिए सबसे बड़ी त्रासदी सांस्कृतिक आघात यह था कि उन्हें अपने कुल की मर्यादा को बनाए रखने के लिए पहले पहचान को गिरवी रखना पड़ता है। जैन धर्म के अनुसार जीवन अत्यंत कठिन होता है। मनुष्य को मांस, मदिरा आदि अनैतिक कार्य से दूर रहना होता है। कुलभूषण जैन मारवाड़ी परिवार से थे जिन्हें अपने जीवन को बचाए रखने हेतु अपने ही धर्म से विस्थापित होना पड़ा। कुलभूषण के रूप में उसकी संस्कृति और पहचान संकट में पड़ जाती है।

'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास की रचनाकार अलका सरावगी सबसे लोकप्रिय और सफल रचनाकार हैं। उनके उपन्यास में सामूहिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के साथ महकथात्मक प्रतिभा है जो अपने समाज की संस्कृति, अस्मिता, अस्तित्व तथा स्वाधीनता के संघर्ष का जीवंत चित्रण प्रस्तुत करती हैं। उपनिवेशवादियों के क्रूर तथा घातक अत्याचारों के बीच भी अपनी संस्कृति व भाषा को जीवित रखती हैं। अलका जी के उपन्यास में अनेक पात्र हैं जो व्यापारी, नेताओं तथा शिक्षित समाज के अंग हैं। उपन्यास के पात्र यथार्थवादी हैं लेकिन जीवन मूल्यों के तथा आदर्शवाद के साथ। 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में उन भारतीय विस्थापितों की जीवन गाथा है जिन्हें बिना किसी अपराध के अपनी ही भूमि से उखाड़ दिया जाता हैं। अलका जी का यह उपन्यास विस्थापितों के शोषण एवं यातनाओं का दस्तावेज है।

कुलभूषण उन सहज व्यक्तियों में से हैं जो भावनाओं से भरे हुए हैं। कुलभूषण अपने ही भाई के परिवार से अपमानित होते हैं, फिर भी वे कभी हताश नहीं होते हैं। उनकी कुष्टिया में उनके पास एक ही सहारा है और वह है उनकी स्मृति और उनका धर्म जो उन्हें अपनी मौलिक पहचान और अपने पूर्वजों के स्वाभिमान से जोड़े रहता है | इस मूल पहचान पर संकट ना आए, इसलिए वह बस कंडक्टरी में नौकरी करता है। 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में अपनी पहचान छुपा कर बस में कुलभूषण अपनी रोजी रोटी के लिए कुष्टिया से पलायन करके कलकत्ता आता है और कोलकाता के तेलीपाड़ा में भाड़े के छोटे से मकान के एक तल्ले पर रहता है। कुलभूषण का बड़ा भाई धर्म-गोत्र पर हैरानी व्यक्त करता- "भूषण

तूने ऐसा क्यों किया ? तूने अपने मां-बाप कुल धर्म गोत्र सब बदल लिए, तूने बंगालिन से शादी की तो चल कोई बात नहीं है। तो उसे अपना नाम बता देता। तू खुद बंगाली बन बैठा? कुष्टिया में हम लोग बंगालियों के बीच बंगाली बनकर रहते थे, उन्हीं की भाषा बोलते थे, उन्हीं की तरह साग-सब्जी खाते थे, पर क्या हमने अपने नाम गोत्र बदल लिए थे।"[26]

भूषण के पास बोलने को कुछ नहीं है। वह यह तो नहीं बोल सकता था कि बंगाली पाड़ा यानी मोहल्ले में रहता है इसलिए नाम बदलना पड़ा। तब क्या बोले ? "भैया, कुष्टिया से जैसे हमें भगाया गया क्योंकि हम मुसलमान नहीं थे, वैसे ही मुझे तेलीपाड़ा से भगा दिया जाता। मुझे गोपाल चन्द्र दास बनना पड़ा। मोहल्ले के लड़के दुर्गा पूजा पर चंदा मांगने आये, तो कहा, जैन बाबू, पांच हजार से कम नहीं लेंगे आपसे, आप तो बड़े आदमी है। इससे कम देने से आपको पाड़ा में रहने नहीं देंगे।"[27] किसी भी व्यक्ति को अपने देश की संस्कृति से जुड़े रहने में धार्मिक परिस्थतियों की विशेष भूमिका रहती है। कुलभूषण अपने देश से विस्थापित होकर कलकत्ता जाने वाले लोग अपने साथ भगवान की मूर्तियाँ और कई प्रकार के धार्मिक ग्रन्थ ले जाते हैं। यही धार्मिक विश्वास उन्हें जीवन में आने वाली परिस्थतियों से लड़ने की शक्ति प्रदान करता है।

साम्प्रदायिक शब्द सम्प्रदाय से निर्मित है जिसका अर्थ होता है, किसी एक धर्म या एक मत को मानने वाले व्यक्तियों का समूह। जब किसी एक सम्प्रदाय का व्यक्ति अपने सम्प्रदाय को श्रेष्ठ एवं दूसरे के सम्प्रदाय को हीनता की दृष्टि से देखे तो वह साम्प्रदायिक मानसिक शैथिल्य कहलाता है। आधुनिक युग में सांप्रदायिकता सबसे जटिल समस्या है। यह एक ऐसी विचारधारा है जो किसी विशेष धार्मिक पहचान पर जोर देती है। भारत में सांप्रदायिकता के उदय के मुख्य कारण धर्मों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि थी जिसका परिणाम यह हुआ कि हिंदू और मुस्लिम दोनों में से कोई भी अपनी सदियों पुरानी शत्रुता को भूल नहीं पाया था।

डॉ. रमणिका गुप्ता के अनुसार- "आजादी के पश्चात भी हम वोट की राजनीति के लिए देश में धर्म के आधार पर भिन्न-भिन्न सिक्कों को मूल धारा में नहीं संजोया, बल्कि सत्ता पर अधिकार पाने हेतु अधिक चिंतित रहे। जिसके फलस्वरूप धर्म का जातीय स्वरूप अधिक पृथक हो गया।"[28]

कुष्टिया में फैले साम्प्रदायिक तनाव और हिंसा को सुनकर श्यामा धोबी अधिक चिंतित हो जाता है। उसे पूरा विश्वास था कि यदि किसी को भी उससे जन्म से सम्बंधित घटना के बारे में पता चलेगा तो लोग उसे तिरस्कृत नजरों से देखेंगे। श्यामा धोबी से उसकी माँ ने कहा-"तुझे लड़की कौन देगा? जोगी बाबा तुझे मेरी झोली में डाल गए थे। तेरा खतना हो चुका था। तू न मुसलमान रहा न हिन्दू। यह बात सब जानते हैं यहाँ पर। धोबी बिरादरी अपने से अलग किसी जाति को क्या, अलग गोत्र में भी बेटी नहीं देती। श्यामा ने उस दिन भूलने का बटन नहीं दबाया था। माँ को रोते-झींकते छोड़ वह सीधे लालन शाह की मजार पर गया था। दो रात वहाँ बिना कुछ खाए-पिए पड़ा रहा था। उसके बाद वह घर लौट आया था और हँसते हुए अपना काम ऐसे करने लगा था जैसे कोई बात कभी हुई ही नहीं हो।"[29]

साम्प्रदायिक विचारधारा ने मनुष्यों की नफरतों ने परस्पर एक दूसरे की विरोधी बना दिया है और उनमें विचार शक्ति को ही समाप्त कर दिया है। ऐसे नफरत के माहौल में कुछ मानवीय शक्तियाँ इसे रोकने का प्रयास करती हैं। परन्तु समाज में साम्प्रदायिक तनाव इतना बढ़ गया है कि उसे शांत करने के लिए हिन्दुस्तान के दो टुकड़े तक करने पड़ गए और देश विभाजन की दुर्घटना से लाखों लोग विस्थापन की समस्या से जूझते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास की सम्पूर्ण कथावस्तु विस्थापन से उत्पन्न विस्थापन की त्रासदी पर आधारित है। देश में विभाजन के कारण साम्प्रदायिक भेदभाव बढ़ने लगे, जिसके कारण विस्थापन मुख्य रूप से घटित हुआ। किसी भी देश का विभाजन साम्प्रदायिकता

को लेकर किया गया, परन्तु इसकी आड़ में जो दंगे हुए, जिसके कारण कितने मारे गए और कितने विस्थापित हुए इसका अनुमान भी लगाना मुश्किल है।

वर्तमान समय में हिंदी साहित्य अपने विविध पक्षों को लेकर उभर रहा है। आज के समय में साहित्य को देखने का हमारा नजरियां भी बदल चुका है। कई वर्षों पहले साहित्य की पहचान उसकी भाषा, विचार एवं संवेदना के बल पर होती थी। उस दौरान साहित्य व्यक्ति विशेष प्रधान साहित्य था और समाज को हाशिए रखा जाता था। परन्तु वर्तमान में साहित्य समाज प्रधानता को विशेष महत्त्व देती है। जिस समय देश स्वतंत्र हुआ देश में औद्योगीकरण और शहरीकरण के विकास पर अधिक जोर दिया गया। फलतः विकास के अंधानुकरण के कारण शहरों का विस्तार, बड़े-बड़े उद्योग आदि का निर्माण पूरे जोश से होने लगा। परन्तु इस आधुनिक विकास के दौरान देश को आन्तरिक युद्ध का भी सामना करना पड़ा और देश में अपना आधिपत्य विशेष संस्कृति को आधार बनाकर जमाने की कोशिश प्रारम्भ हुई, परन्तु धार्मिक विभिन्नताओं के कारण देश में एक संस्कृति या सम्प्रदाय का वर्चस्व नहीं बनाया जा सका। परिणामतः आम जनमानस के सपनों की बलि चढ़ाकर देश का विभाजन कर दिया गया। जिसके कारण विभाजन के साथ विस्थापन की त्रासदी का सामना करना पड़ा। इस परिप्रेक्ष्य में कई उपन्यासकारों ने पूरी निष्ठा एवं ईमानदारी के साथ विस्थापन की त्रासदी को अपने उपन्यासों का केन्द्रीय विषय बनाया है। अतः विस्थापन की त्रासदी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन आवश्यक है।

संदर्भ

1. रेणु, फणीश्वरनाथ; जुलूस: https://www.bhartiyasahitya.com, Date: 04-12-2021.
2. तिवारी, डॉ. रामचंद्र; हिंदी का गद्य साहित्य; विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी: 221005; दशम संस्करण; पृ. 840.
3. https://dailychhatisgarh.com; Date: 05-12-2021.
4. राय, प्रो. गोपाल; हिंदी उपन्यास का इतिहास; राजकमल प्रकाशन; 1-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002; संस्करण, 2016; पृ. 344.
5. सिंह, पुष्पपाल; रावी शती का हिंदी उपन्यास; राधाकृष्णन प्रकाशन; 1-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002; द्वितीय संस्करण, 2016; पृ. 226.
6. यादव, श्री कृष्ण; कुलभूषण के बहाने विस्थापन की त्रासदी का आख्यान; पुस्तक समीक्षा; https://nationalfrontiers.in Date: 04-12-2021
7. सरावगी, अलका; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2020; पृ. कवर पेज.
8. वहीं, पृ. 145.
9. वही, पृ. 146.
10. वही, पृ. 211.
11. शंपा शाह; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए: https://samalochana.com. Date: 04-12-2021
12. https://www.outlookhindi.com, Date: 03-12-2021.
13. सरावगी, अलका; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2020; पृ. 211.
14. https://www.aajtak.in, Date: 04-12-2021.
15. प्रियदर्शन की कुलभूषण पर टिप्पणी; https://www.outlook.com, Date: 04-12-2021.
16. वही.
17. कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास का एक संस्था द्वारा बनाई गयी एक फिल्म में दिखाया गया है जो 24 अक्टूबर 2020 को प्रकाशित हुई.वही,
18. सरावगी, अलका; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2020; पृ. 189.

19. वही, पृ. 189.

20. वही, पृ.190.

21. वही, पृ.190

22. पालीवाल, सूरज; उपन्यासों में नोआखली और महात्मा गांधी; आजकल; अगस्त 2021; अंक, पृ. 07.

23. बनास जन; पल्लव; 16/1454, इंदिरा नगर मुख्य रोड, सेक्ट. C, 18, इंदिरा नगर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, नया अंक, 226016.

24. सरावगी, अलका; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2020; पृ. 212.

25. त्रिपाठी, चन्द्रकला; नाम अब भी चाहता है वह: कुलभूषण, https://www.specialoveraginews.in. Date: 05-12-2021.

26. सरावगी, अलका; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2020; पृ. 15.

27. वही, ..

28. गुप्ता, रमणिका; साम्प्रदायिकता के बदलते चेहरे; वाणी प्रकाशन; 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण, पृ. 36.

29. सरावगी, अलका; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2020; पृ. 53.

उपसंहार

सम्पूर्ण पृथ्वी महाद्वीपों एवं महासागरों के योग से बनी है। पृथ्वी की भूपर्पटी का 71 प्रतिशत भाग महासागरों तथा 29 प्रतिशत भाग महाद्वीपों से घिरा हुआ है। कुछ भौगोलिक वैज्ञानिकों के अनुसार महाद्वीप तथा महासागर विभिन्न प्लेट के ऊपर स्थित है। जब यह प्लेट प्रवाहित होती है, तो उनके साथ महाद्वीप तथा महासागरीय तट भी विस्थापित होते हैं।विश्व में कुल सात महाद्वीपों तथा महासागरों का रूप प्राप्त हुआ है। विश्व के सात महाद्वीप एशिया, अफीका, उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, अन्टार्कटिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया है। एशिया या जम्बूद्वीप आकार और जनसंख्या दोनों ही दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा महाद्वीप है। यह उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है। एशिया और यूरोप को मिलाकर कभी-कभी यूरेशिया भी कहा जाता है क्योंकि पश्चिम में यूरोप से अपनी सीमाएँ मिलाती हैं। एशिया महाद्वीप में कुल 50 देश शामिल हैं जिनमें भारत देश भी शामिल है। एशिया के दक्षिण भाग में एक उपमहाद्वीप स्थित है। इस उपमहाद्वीप को दक्षिण एशिया भी कहते हैं। भूवैज्ञानिकों के अनुसार इस उपमहाद्वीप का अधिकांश भाग भारतीय प्रस्तर पर स्थित है। जो आमतौर पर भारतीय उपमहाद्वीप को संदर्भित करता है, जिसमें भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, मालद्वीव और श्रीलंका शामिल हैं।

किसी महाद्वीप का एक बड़ा भाग जो भौगोलिक व् सांस्कृतिक दृष्टि से महाद्वीप के अन्य भागों से अलग पहचान रखता है और उसके भू-भाग में एकरूपता हो, वह उपमहाद्वीप कहलाता है। भारतीय उपमहाद्वीप में शामिल भारत देश में आधुनिककाल का समय 19 वीं शताब्दी की प्रारंभ से माना जाता है। कुछ इतिहासकारों के अनुसार मुगलकाल के पतन के साथ ही आधुनिक इतिहास की शुरूआत मानी जाती है। वास्तव में भारत शुरू से सोने की चिड़िया के रूप में जाना था। परन्तु कई वर्षों तक चलने वाले

राजनैतिक गतिविधियों का परिणाम यह हुआ कि भारत की सत्ता भारतीय शासकों के हाथ से निकालकर कब विदेशियों के हाथ में पहुँच गयी इसका अंदाजा इतिहास के विश्लेषण से लगाया गया। इसी दौरान भारत को अंग्रेजों के गुलामी से निकालने के लिए कई भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन हुए। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही अंग्रेजी शासन से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष प्रारंभ हो गए। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप 15 अगस्त, 1947 को भारत ने अंग्रेजी शासन से स्वतंत्रता प्राप्त की, लेकिन यह स्वतंत्रता भारत को विभाजन की ओर ले गया। परिणामस्वरूप भारत दो भागों में विभाजित हुआ, जो वर्तमान में भारत और पाकिस्तान के रूप में देखा जाता है।

पाकिस्तान, बांग्लादेश एवं भारत एक साझा इतिहास के भागीदार माने जाते हैं, इसलिए इतिहास की इस समय रेखा के अंतर्गत सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास की झलक है। वर्तमान बांग्लादेश पाकिस्तान का एक प्रांत था। जिसका नाम पूर्वी पाकिस्तान था। कई सालों के संघर्ष और पाकिस्तान की सेना के अत्याचार तथा बांग्लभाषियों के दमन के विरोध में पूर्वी पाकिस्तान के लोग क्रांतिकारी आन्दोलन पर उतर आए। इसे मुक्ति संग्राम भी कहा जाता है। यह युद्ध 24 मार्च 1971 से 16 सितम्बर तक चला, जिसमें भारत का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस रक्तरंजित युद्ध माध्यम से बांग्लादेश पश्चिमी पाकिस्तान (पाकिस्तान) से स्वाधीनता प्राप्त की। इस ऐतिहासिक जीत को 'विजय दिवस' के रूप में मनाया जाता है। बांग्लादेश की आजादी की लड़ाई के दौरान मुक्तिवाहिनी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस तरह 16 दिसम्बर 1971 को दुनिया के मानचित्र पर एक नए राष्ट्र का उदय हुआ। जिसे हम बांग्लादेश के नाम से जानते हैं।

हिंदी साहित्य जगत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाली अलका सरावगी कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में जानी जाती हैं। अलका सरावगी साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित हो चुकी हैं। इनका बहुचर्चित उपन्यास 'कलिकथा वाया बाइपास' है जो अनेक भाषाओं में अनुदित है। इसके

अतिरिक्त 'शेष कादंबरी', 'कोई बात नहीं', एक ब्रेक के बाद' आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं। अलका सरावगी एक सशक्त कहानीकार के रूप में स्थापित हो चुकी हैं। उनका पहला कहानी संग्रह वर्ष 1996 में 'कहानी की तलाश' में प्रकाशित हुई तथा दूसरा कहानी संग्रह 'दूसरी कहानी' के नाम से जानी जाती हैं। अलका सरावगी को अपने पहले उपन्यास 'कलिकथा वाया बाइपास' के लिए 2001 में साहित्य अकादमी पुरस्कार और 'श्रीकांत वर्मा पुरस्कार' से नवाजा गया है।

हमारे देश में आजादी के बाद विभाजन एवं विस्थापन का इतिहास अत्यंत वेदनापूर्ण रहा है जिसकी निर्मम तस्वीर हमें विभिन्न कहानियों एवं उपन्यासों में देखने को मिलती है। देश के पूर्वी हिस्से की बड़ी आबादी की त्रासदी यही रही है कि उसे एक बार नहीं, अपितु दो-दो बार विभाजन के दंश को झेलना पड़ा। विभाजन के चलते लाखों बिखरती जिंदगियाँ हैं, उनकी घृणायें हैं तथा उनसे जुड़ी अनेक भयावह कहानियां हैं जिसे कोई याद नहीं करना चाहता, उन्हीं गुमनाम कहानियों को दर्ज करता है। अलका सरावगी का उपन्यास 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' जिसके बहाने बांग्लादेश के कुष्टिया जिले से कोलकाता तक एवं आगे के पलायन के दर्द को पिरोया गया है।

यह उपन्यास कुलभूषण की ही कथा नहीं, बल्कि अथाह वेदना की अभिव्यक्त करता है जो बांग्लादेश के कुष्टिया जिले से रिफ्यूजी बनकर कोलकाता आया है। नाम छिपा कर जीना उसकी नियति है। पहले 'कुलभूषण' से भूषण बना फिर 'गोपाल चंद्र दास' फिर भी वह अपना वजूद बचाए रखना चाहता है। इस कहानी में कई उपकथाएं हैं, जो राजनीति, भाषा, समाज, तथा संस्कृति से जुड़े बहुत से यथार्थ प्रश्नों को प्रभावी ढंग से रेखांकित करती है।

इस कहानी में बांग्ला ही नहीं बल्कि, मारवाड़ी संस्कृति को भी बखूबी पेश किया गया है। इसमें घृणा-सांप्रदायिकता, मार-काट, भूख, सड़ी लाशें और भी भयंकर स्मृतियों के साथ-साथ प्रेम कथाएं, प्रेम के रंग विद्यमान हैं। यह उपन्यास सिर्फ बंटवारे की राजनीति की कहानी नहीं, कहता बल्कि यह परिवारों के

भीतर के विस्थापन, बंटवारे तथा अपने लोगों के ही अंदर दरारों की दास्तान भी कहता है। उपन्यास के नायक कुलभूषण को अपना पैतृक घर छोड़कर कोलकाता अपने भाइयों के पास आना पड़ता है, जहां उसके साथ शरणार्थियों जैसा व्यवहार किया जाता है। फिर भी वह एक बंगाली लड़की से विवाह कर दूसरी बंगाली पहचान के साथ बस जाता है। कुलभूषण अपने मित्र श्यामा से भी खुलकर बातें नहीं कर सकता और अंत में वही श्यामा बंदूक उठाता है, जो यह दर्शाता है कि वह धर्म के खून-खराबे से तंग आ चुका है। दंगों ने इंसान को इंसान नहीं रहने दिया और अंततः कुलभूषण को मालूम होता है जिसे हम विस्थापन कहते हैं उसकी कथा तो समाप्त ही नहीं हुई है बल्कि वह अब तक जारी है।

अलका जी का यह उपन्यास लीक से हटकर है और यह हमें यथार्थ से परिचित कराता है कि सांप्रदायिकता की आग न केवल देश को जलाती है, बल्कि नागरिकों की आने वाली अनेक पीढ़ियों तक को झुलसा देती है। हिंदी उपन्यास लेखिकाओं की लंबी सूची में अलका सरावगी जी का विशिष्ट स्थान है। इनका कथा साहित्य मध्य वर्गीय समाज के साथ देश के अनेक पहलुओं को चित्रित करता है। कोलकाता शहर में जन्मी अलका सरावगी जी ने विवाह के पश्चात कर्तव्यनिष्ठा के साथ एक ओर घर गृहस्थी को निभाती रहीं तो दूसरी ओर उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में भी अपनी अलग पहचान बनाई।

अलका सरावगी की कथा लेखन के साथ-साथ पत्रकारिता में भी विशेष रुचि रही है। स्त्रियों के मुद्दों पर उनके कई लेख प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। इन्होंने अपने आसपास मानव जीवन के बढ़ते तनाव तथा संघर्षों को अपनी प्रतिभा एवं अनुभव से अपने साहित्य में प्रस्तुत किया है। भूमंडलीकरण के इस दौर में विगत दो-तीन दशकों में उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में जो बदलाव के मंजर नजर आए हैं वह सचमुच समाज की परत दर परत खोल रहे हैं। आज के मल्टीमीडिया के दौर में भी गरीबी, बेरोजगारी, शोषण, अत्याचार, विस्थापन, अनैतिकता, भ्रष्टाचार जैसी अन्य समस्याओं ने अपने पैर पसार रखे हैं। वर्तमान दशकों में जो साहित्य लिखा जा रहा है वह इन्हीं सब विषयों का चिट्ठा प्रस्तुत कर रहा है।

ये घटनाएं कहीं लेखक का भोगा हुआ यथार्थ होती हैं, तो कहीं आंखों देखा सच। अलका सरावगी जी का उपन्यास 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' ने इसी कड़वे सच से अवगत कराया है।

राजनीतिक विस्थापन के तले विस्थापितों के हर सपने को कुचला जा रहा था। जीवन में एक नए सुअवसर की प्राप्ति के लिए लोगों ने नए राष्ट्रों व प्रदेशों की ओर प्रस्थान किया, परंतु भारी सांस्कृतिक अंतर होने के कारण विस्थापित जन सदैव अयाचित के रूप में रह जाते हैं। भीड़ में भी अकेले रहने के लिए अभिशप्त विस्थापित जन या समूह समस्त सुविधाओं के मध्य में रहते हुए भी जीवन भर परायेपन के एहसास को भोगते रहते हैं।

विस्थापन एक कारुणिक परिघटना के रूप में दुनिया भर में गहरी सोच का विषय बन गया है। आजकल यह साहित्य का ज्वलंत विषय है । समकालीन हिंदी उपन्यासकारों ने विस्थापन से जुड़ी समस्याओं और उसके विविध रूपों व प्रभावों को अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। दुनिया भर में समय और समाज की समस्याओं, आकुलताओं, विसंगतियों, चुनौतियां जैसे जटिलताओं को व्यक्त करने के लिए उपन्यास एक सफल और समर्थ माध्यम है।

विस्थापितों के प्रति सहानुभूति विस्थापन के प्रति गंभीर आक्रोश, चिंतन तथा व्यापक अध्ययन से अलका सरावगी कुलभूषण के व्यक्तित्व को बनाती हैं। समाज के भीतर विद्यमान विसंगतियों पर अलका सरावगी अपने साहित्य के माध्यम से चोट करती हैं। इन्होंने विभिन्न राजनीतिक विषयों को उठाकर वर्तमान राजनीति की विडंबनाओं को प्रस्तुत किया है। वे राजनीति के जाल में फंसे हुए विभाजन का यथार्थ चित्र खींचती हैं। ऐसे दौर में विभाजन की समस्या को समझने में अलका सरावगी हमारी मदद करती हैं। अलका सरावगी निश्चित रूप से बड़ी कथाकार हैं जो विस्थापन जैसे ज्वलंत मुद्दों पर लिखकर हमारे समक्ष विस्थापितों के दर्द को गहरे से बयां करती हैं। अलका सरावगी अपने उपन्यास 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' से देश की राजनीति, विभाजन की समस्या के विभिन्न आयाम को हमारे सामने लाती हैं। इस

उपन्यास के माध्यम से विस्थापन के दर्द और उनसे जुड़े पारिवारिक विस्थापन के तनाव को देखा जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

अ) आधार ग्रंथ

- सरावगी, अलका; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2020.

आ) सहायक ग्रंथ

- गुप्ता, रमणिका; साम्प्रदायिकता के बदलते चेहरे; वाणी प्रकाशन; 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण. 2004.
- चन्द्र, विपिन; आधुनिक भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद; अनामिका प्रकाशन, 52, जवाहर लाल नेहरु रोड, तुला राम बाग, जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद-211002. द्वितीय संस्करण: 2005.
- चव्हाण, डॉ. अर्जुन; समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; प्रथम संस्करण-2008.
- जोशी, राजेश; एक कवि की नोटबुक; राजकमल प्रकाशन, 1-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण:2014.
- तिवारी, डॉ. रामचंद्र; हिंदी का गद्य साहित्य; विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी: 221005; बारवां संस्करण, 2020.
- देशपांडे, भीमराव गोपाल; लोकमान्य तिलक (जीवन चरित्र); राजकमल प्रकाशन, 1-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरयागंज, नई दिल्ली- 110002; प्रथम संस्करण; 2000.

- नेहरु, पण्डित जवाहर; भारत की खोज; एन. सी. आर. टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय से प्रकाशित: नई दिल्ली 110016; संस्करण: 1996.
- नेहरु, पण्डित जवाहर; हिन्दुस्तान की कहानी; सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, एन-77, कनोट सर्कस, नई दिल्ली- 110001; संस्करण: 2011.
- न्यू ऑक्सफोर्ड डिक्सनरी ऑफ़ इंग्लिश; न्युयोर्क; ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस; ग्रेट कैलेंडर स्ट्रीट ऑक्सफोर्ड, ox26op united kingdom, sixth edition, 2006.
- पाण्डेय, अचला; विस्थापन का साहित्यिक विमर्श; लोक भारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी भवन, सिविल लाइन्स, प्रयागराज-211001; प्रथम संस्करण; 2019.
- पालीवाल, कृष्णदत्त; उत्तर आधुनिकता और दलित साहित्य; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; 2020.
- मामोरिया, चतुर्भुज; एशिया का प्रादेशिक भूगोल; साहित्य भवन प्रकाशन, 3/20b, तुलसी सिनेमा, संजय नगर, पशुपति कॉलोनी, खंडारी, आगरा- 282003; द्वीतीय संस्करण: 1976.
- राय, प्रो. गोपाल; हिंदी उपन्यास का इतिहास; राजकमल प्रकाशन; 1-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002; संस्करण, 2016.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद; भारतीय इतिहास भाग-1.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद; भारतीय इतिहास भाग-3.
- श्री कृष्णदास; स्वंतंत्रता संग्राम के 90 वर्ष इंडियन प्रकाशन, 36, पन्ना लाल रोड, जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद- 211002; प्रथम संस्करण: 1946.

- शर्मा, वीरेंद्र प्रकाश; समाजशास्त्र का परिचय; पंचशील प्रकाशन, 4, चौरा रास्ता, नेहरु बाजार, फिल्म कॉलोनी, मोदीखाना, जयपुर- 302003; प्रथम संस्करण: 2004.
- सरावगी, अलका; शेष कादंबरी; राजकमल प्रकाशन, 1-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण 2004.
- सरावगी, अलका; कोई बात नहीं; राजकमल प्रकाशन, 1-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संकरण: 2015.
- सिंघवी, कमला; नारी: भीतर और बाहर; नेशनल पब्लिशिंग हाउस प्रकाशन, अंसारी रोड दरिया गंज; नई दिल्ली-110001, संस्करण: 1972.
- सिंह, पुष्पपाल; 21 वीं शती का हिंदी उपन्यास; राधाकृष्ण प्रकाशन, 1-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरयागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण: 2015, 2016.
- सिंह, सविन्द्र; भौतिक भूगोल; प्रयाग पुस्तक भवन प्रकाशन, 20-A, यूनिवर्सिटी रोड, पुराना कटरा, इलाहाबाद- 211002; पुनः संशोधित संस्करण, ग्यारहवां; 2020.

इ) पत्र-पत्रिकाएँ

- आजकल; सं. फरहत प्रवीन; प्रकाशन विभाग, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-03; अगस्त, 2021.
- प्रेरणा; सं. अरुण तिवारी; देशबंधु भवन; 26 बी; भोपाल-462042; जुलाई-दिसम्बर, 2010.
- बनास जन; सं. पल्लव; 339, डी.डी.ए., ब्लॉक सी एंड डी, कनिष्क अपार्टमेंट, शालीमार बाग़, दिल्ली-88.

ई) वेबसाइट

- www.aajtak.in.
- www.apnimaati.com.
- www.bhartiyasahitya.com.
- www.dailychhatisgarh.com.
- www.drishtiias.com.
- www.janjwar.com.
- www.jivniitihashindi,com.
- www.nationalfrontiers.in.
- www.navbharattimes.indiatimes.com
- www.pustak.org.
- www.samalochana.com.
- www.sarkarifocus.com.
- www.scotbuzz.org.
- www.scotbuzz.org.
- www.shabdankan.com.
- www.specialoveraginews.in.
- www.outlook.com.
- www.outlookhindi.com